

प्रतिश्रुत पीढ़ी

आठ प्रतिश्रुत कवियों
की धुने हुईं सौ कवितार

मृत्युञ्जय उपाध्याय
निरजन महावर
श्याम मुन्दर घाप
कुमार द्र पारसनाथसिंह
जुगमतिर तायन
अजित पृष्णत
राजीव मन्सगा
रणजीत

संपादन

रमजीत

नवयुग ग्रन्थ कुटीर
बीकानेर

यह नहीं कि मैं अपने परिवेश की असगतियों के प्रति अघा हूँ
 या कि मैं उसकी विरूपताओं को देखना नहीं चाहता
 नहीं, मैं उन्हें देखता हूँ
 पर मैं सिर्फ उन्हें ही नहीं देखता
 और न उनके गौरव-गायन में ही
 अपनी कविताओं को लगाना चाहता हूँ
 मैं उन विरूपताओं की लपटों के बीच
 प्रह्लाद की तरह सिर उठाते हुए सौंदर्य को भी देखता हूँ
 और उस सगति को भी
 जो इन असगतियों की काँड़ फाड़ कर झांक जाती है !
 मैं अपने चारों ओर फैली हुई सक्रान्ति से नहीं,
 उसके बीच से अपने नवश उभारती हुई क्रान्ति से प्रतिभ्रुत हूँ !
 अस्तित्व की बेहदगियों के रेगिस्तान का नहीं,
 उसके नीचे बहती हुई सायबता की उस अत सलिला का कवि हूँ
 जो पाताल-तोड़ षुए के रूप में फूट पड़ना चाहती है !
 मैं उसकी मुक्ति के लिये सकल्पित हूँ !

प्रतिश्रुत पीढ़ी • एक संदर्भ बोध

विद्यते पन्द्रह बरों से हिन्दी की समसामयिक कविता को मोटे तौर पर 'नयी कविता' कहा जाता रहा है। पर उसे गिल्पगत नवीनता की दृष्टि से मसे ही यह एक नाम दिया जा सकता हो, वस्तु और धर्मोच की दृष्टि से वह एक तरह की कविता नहीं है। ऐसी स्थिति में सिर्फ गिल्पगत नवीनता के आधार पर इस कविता को 'नयी कविता' कह कर जनक विरोधी प्रवृत्तियों की कविता धारार्यों को एक ही भानुमती के कुनवे ध रक्षने से कोई साम नहीं। उस्टे उसे सही परिप्रेष्य में समझने में बामा ही पड़ती है।

बीमत्स और कुत्सित हृदयों और विम्बों से मिल कर बनती है। इस कविता के प्रतिनिधि उदाहरण हमें श्रीकांत वर्मा, कलाग बाजपयी मुद्रा राक्षस, राजकमल चौधरी और दूधनाथ मिह्र जस कवियों की कविताओं में मिलते हैं। इस धारा में वे सभी समसामयिक कवि आ जाते हैं जो अपने आपको 'पिटे हुए' 'मूम' 'सर्रात' या 'शय्यावादी' कहते हैं। अमेरिका की बीट पीढ़ी और बगला की मूखी पीढ़ी इनकी प्रेरणा के स्रोत हैं। ये वे कवि हैं जिन्हें जीवन और जगत का कोई हृदय अपने वास्तविक रंग में नहीं दिखाई देता। बदन शदन पर इनके गम्भीर और विम्बों में मौत के सन्नाह और विश्रय की दुर्गन्ध छाती है। हर कविता इन्हें 'धीरे भी अधिक नगा' कर जाती। कविता इन लोगों के लिए सृजन नहीं उत्सर्जन है वह भाव है जिसमें बह कर य तोय अपने मन का गदगो और विभाग का विनोप निजास्त हैं। आकाश के तारे इन्हें फूसियों को तरह दिखाई देते हैं और किसी की याद इन्हें इम तरह छाती है जस 'कोई बच्चा खोसते हुए जल में छूट कर गिर जाय'। मुहब्बत इन्हें 'गिरे हुए गम के बच्चे' सी और चाहत 'किसी मरीज के खास कर मौ न पूर सक्ने की यत्नवुरी' सी लगती है।

इस बीमार कविता के भी दो प्रमुख 'आयाम' हैं एक यह जिसमें मृत्यु-बीज और उसका सन्नाह की अनिर्व्यक्ति मिली है, जिसमें रोग, पीप और मवाद के विम्ब अधिब हैं और दूसरा यह जिसमें यौन बूटाए और विह्वलियाँ एक ऐसे बीमत्स और कुत्सित रूप में अनिर्व्यक्ति हुई हैं, कि उसके सामने वह सब साहित्य जो साधारणतया बसलोल रहा जाता है, पक्षि और मृत्पथान लगने लगता है। 'नय कवि' की जगह इन 'कविताओं' के रचयिताओं को 'नग कवि' कहा जाय तो गायद वस्तु न्यति की अधिब सहै अनिर्व्यक्ति होगी। यह कविता गन्द के पूरे अर्थ में 'कुत्सित कविता' है।

यहाँ एक बात स्पष्ट कर लनी चाहिए। बीमार कविता के इन कवियों की भी कुछ कविताओं को, जिनके विम्ब यद्यपि रंग और निरासन के विम्ब हैं तथापि जो अपने परिवेश की विद्रूपता और बीमत्सता के

हीनता की भावना से प्राकृत होकर, अपनी हार मान लेता है ।

‘नवी कविता’ का तीसरा और चौथा वर्ग—बीमार कविता और अकविता—कई बार एक दूसरे के काफी नजदीक आ जाते हैं । वास्तव में वे दोनों धाराएँ चात्सीसी की उस काव्यधारा की ही नयी परिणतियाँ हैं जिसे प्रयोगवाद कहा गया था । एक में उसकी अह-केन्द्रीयता, कृष्ण-पराजयवाद का नया विकास हुआ है और दूसरी में उसकी गिल्फवादिता का, उसकी ‘धोखान वृत्ति’ का ।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ‘प्राधुनिकता’ और ‘नयेपन’ पर एकाधिकार का दावा भी सबसे ज्यादा जोर-शोर से इन्हीं दोनों धाराओं के कवि और उनके समकक्ष कर रहे हैं ।

और इनकी यह प्राधुनिकता है क्या ?

मोटे तौर पर जिसे य लोग ‘प्राधुनिक भावबोध’ कहते हैं उसके कुछ प्रमुख आयाम हैं विरूपता में रूप देखना, निरर्थक अमूर्तता में रस सेना, जीवन की हर महत्वपूर्ण और पवित्र चीज को कीचड़ में लपेटना और हर छोटी और सूद्र चीज को गौरवायित करना, स्वल्प, स्वच्छ, साधक और जीवित की जगह बीमार, बीमत्स, अयहीन, मृत और अर-खो-मुख में सौंदर्य देखना, सबको एक दूसरे के लिए अजनबी समझना हर समय मृत्यु के आतंक से ग्रस्त रहना, और अपने सिवा अन्ध सभी लोगों के अस्तित्व को सहने का अभिगाप भोगना, या ऐसा सब होने का अभिनय करना । अभिनय करने की बात में इसलिये कह रहा हूँ कि अगर ‘प्राधुनिक भाव-बोध’ के ये सब चिह्न वास्तव में किसी व्यक्ति में हों, तो उसे मानसिक चिकित्सालय के सिवा कहीं भी नहीं भेजना चाहिए और चूँकि हमारे अधिकांश ‘प्राधुनिकतावादियों’ को वहाँ रखने की जरूरत महसूस नहीं की जाती (हां कुछ को कभी कभी भ्रमण्य होती है), इसलिए यही कहना होगा कि प्राधुनिक भाव-बोध के अधिकांश आयाम उहनि छोड़े हुए हैं—पश्चिमी पत्र-पत्रिकाएँ पढ़-पढ़ कर अजित’ किय हैं ।

उत्पादन और उस पर प्रहार करती हैं 'बीमार कविता' की सजा से बचने करना होगा। इसी प्रकार बीमरस और विरूप विम्ब कई स्वस्थ दृष्टिकोण के कवियों की प्रभावशाली कविताओं में भी मिलते हैं। इसलिए किसी कविता को बीमार कविता बनाने वाली मूल बात बसल दण्ड विम्ब विधान नहीं उस विधान के पीछे कवि की दृष्टि, उस विधान का उद्देश्य है। केवल सतह की अस्वस्थता के कारण किसी कविता को 'बीमार कविता' की सजा देना अनुचित होगा।

नयी कविता का बोधा रूप वह है जिसे छन्दमुक्त कविता की तुलना में 'अप्रयुक्त कविता' कहा जा सकता है। यह ऐसी 'शक्ति' है जिसे स्वस्थ या बीमार कहने से कोई लाभ नहीं, क्योंकि वह कविता ही नहीं है। दाब देनी पड़ेगी इसके कुछ साहसी सदेगावाहकों को कि वे स्वयं अब इसे 'अकविता' कहने लगे हैं (यद्यपि अपने आपको 'अकवि' कहने वाले सभी लोग हमेशा अकविता ही लिखत हों तो बात नहीं बसत जरूरत वे अच्छी खासी कविताएँ भी लिख लेते हैं)। मैं इसे उत्तमजुल कविता कहना पसंद करता हूँ। यह वह कविता है जो गमों का साधक प्रयोग नहीं करती, उनसे बचती है। या फिर उनको इट-पत्थरों की तरह अपने पाठकों के सिर पर द मारती है। वस्तुतः गल्प ही इसके लिए सब कुछ है। इसलिए इसे गल्पवादी भी कहा जा सकता है। इस गल्पवादी अकविता के कुछ 'अलंकार' उदाहरण गमन की कई कविताओं में मिल जाते हैं। नवन के प्रपञ्च इस धारा के कुछ प्रतिनिधि उदाहरणों का 'मुद्र' सङ्ग्रह है। पुराने प्रयोग वादियों में प्रनाकर भावने और लम्बीकांत वर्मा में यह प्रवृत्ति काफी प्रबल है। एकदम समसामयिक मूत्रन में विकृत शक्ति लोगों का एक पूरा समूह 'अकविता' का अभ्यास कर रहा है। पर इस अकविता के 'सबधेष्ट' कवि हैं जो अपनी अयहीनता के बावजूद साधारण पाठकों को आतंकित कर सकने में सफल हैं। वे जिनकी कविताएँ पढ़ते हुए पाठक को सगना है कि इसमें कोई ऐसा अर्थ है जो उनकी साधारण बुद्धि की परत में नहीं आ रहा है। और वह उस 'गहर अर्थ' में आतंकित और एक भूनी आत्म

होनता की मायना से आवाजत होकर, अपनी हार मान लेता है ।

'नदी कविता' का तीसरा और चौथा वग—बीमार कविता और अकविता—कई बार एक दूसरे के काफी नजदीक आ जाते हैं । वास्तव में ये दोनों धाराएँ घालीसी की उस काव्यधारा की ही नयी परिणतिमाँ हैं जिसे प्रयोगवाद कहा गया था । एक में उसकी मह-वे-द्रीयता, कुडा-पराजय वाद का नया 'विकास' हुआ है और दूसरी में उसकी शिल्पवादिता का, उसकी 'धौकान वृत्ति' का ।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि 'आधुनिकता' और 'नयेपन' पर एकाधिकार का दावा भी सबसे ज्यादा जोर-शोर से इहाँ दोनों धाराओं के कवि और उनके समर्थक कर रहे हैं ।

और इनकी यह आधुनिकता है क्या ?

मोटे तौर पर जिसे व लोग 'आधुनिक भावबोध' कहते हैं उसके कुछ प्रमुख भागमाँ हैं विह्वलता में टप देलना, निरपेक अनूतता में रस लेना, जीवन की हर महत्वपूर्ण और पवित्र चीज की कीचड़ में लपेटना और हर छोटी और क्षुद्र चीज की गौरवाचित करना, स्वस्थ, स्वच्छ, साफ़ और जीवित की जगह बीमार, बीमस्त, अयहोन, मृत और मर-छो-मुल में सौ-दय बेचना, सबकी एक दूसरे के लिए अजनबी समझना हर समय मृत्यु के आतक से शत रहना, और अपने सिवा अ-य सभी लोगों के अस्तित्व को सहने का अभिगाप मोगना, या ऐसा सब होने का अभिनय करना । अभिनय करने की बात में इसलिये कह रहा हूँ कि अगर 'आधुनिक भाव-बोध' व ये सब बि-ह वास्तव में कितनी अस्थित में हों, तो उसे मानसिक अविज्ञानमय क सिवा इहाँ भी नहीं भेजना चाहिए और बूँ कि हमारे अधिकाँग 'आधुनिकतावादियों' को वहाँ रखने की जरूरत महसूस नहीं की जाती (हाँ कुछ की कमी कमी अवश्य होती है), इसलिए यही कहना होगा कि आधुनिक भाव-बोध के अधिकाँग भागमाँ उहोंने छोड़े हुए हैं—पश्चिमी पत्र-पत्रिकाएँ पढ़-पढ़ कर अज्ञान' किया है ।

मसामें ने एक जगह लिखा है अपाहिजत्व की देवी, ओ प्राधुनिक कल्पने । तुम्हें मैं अपने जीवन की ये थोड़ी सी पवित्रता समर्पित करता हूँ, जो तेरी कृपा के उन क्षणों में लिखी गयी है, जब तूने मेरे भीतर सत्कार के प्रति नफरत और नितांत 'न कुछ' के प्रति बजर प्रेम का स्फुरण नहीं किया । लेकिन हमारे इन 'प्राधुनिकतावादियों' की टूजेडी यह है कि वे मसामें की तरह उन क्षणों में नहीं लिखते जब अपाहिजत्व की यह देवी कृपा कर के अपना साया उन पर से हटा लेती है, बल्कि उन क्षणों में ही लिखते हैं जब वह उनके दिलों में सत्कार के प्रति नफरत और 'न-कुछ' के प्रति एक बजर प्रेम का स्फुरण कर देती है ।

लेविस ने जो स्वयं एक प्राधुनिकतावादी कवि और आलोचक के रूप में प्रसिद्ध है प्राधुनिक समाज में ऐसे कवियों की स्थिति को बड़ी विम्वारमक शब्दावली में व्यक्त किया है वह प्राधुनिक दुनिया में केवल उस देहाती मूस की तरह ही जीवित रह सकता है जिसे उपेक्षा पूषक सहन कर लिया जाता है और जो अपने दिमाग में चक्कर काटते हुए टूटे फूटे विम्वों को लिये, अपने आपसे बडबडाता हुआ सराय और पट्टोल पम्प के आस-पास भटकता हुआ, एक ऐसे जीवन की नकलें उतारता रहता है, जिसमें उसका स्वयं का कोई हिस्सा नहीं है ।" प्राधुनिकता के नाम पर समसामयिक कला में आए हुए ऐसे स्थणतावादी आन्दोलनों को पूरी पश्चिमी संस्कृति के अघ-पतन का ही एक प्रमाण सिद्ध करते हुए प्रसिद्ध समाजशास्त्री ओस्वाल्ड स्पेन्सर ने भी इन प्राधुनिकतावादी कलाकारों को 'उद्यमी भेगलीबाज' (इड स्ट्रियस कांपस) और 'गोर करने वाले मूख' कहा ।

और इस अपाहिज प्राधुनिकता की परिणति क्या होती है ? या तो लोग मसामें की तरह लिखना ही छोड़ दत हैं । या अपने वास्तविक या छोड़े हुए विशेष का धमन अपने विम्वों और अयत्नीन शब्दों में करते रहते हैं और या फिर इस बेमतलब बेहूदगी से ऊब कर ईलियट, प्रोहॉन और अज्ञेय की तरह पाछे हट कर कथौतिक धम और 'असाध्य चीणा' की शरण में लेते हैं । और उनका सारा 'बद्धत वित्रीह' मध्यकालीनता के चरत्तों पर समर्पित है

इसी स्थिति को देखते हुए राजीव गांधी की यह बात समझ में आती है कि साहित्य में वास्तविक प्राधुनिकता धनी अपने जन्म की प्रतीक्षा में है, कि 'प्राधुनिक जीवन के प्रति घृणा' (में कहना चाहूंगा एक बजर घृणा) पर आधारित प्राधुनिक कला वास्तव में प्राधुनिकता का छायाभास मात्र है ।

प्राचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहीं कहा है कि वास्तविक प्राधुनिकता की तीन आधारभूत धारणाएँ हैं—इहलौकिकता, ऐतिहासिक चेतना और व्यक्तिगत मुक्ति की जगह सामूहिक मुक्ति की धारणा । प्राचीनता और मध्यकालीनता इस लोक की कम महत्व देती थीं, सत्सर्ग को एक विश्वास की परम्परा में से गुजरते हुए नहीं, कभी एक श्रेष्ठ-परंपरा में से गुजरते हुए और कभी एक निमत वृत्त में चक्कर लगाते हुए कल्पित करती थीं और सामाजिक सुख और स्वाधीनता की जगह व्यक्तिगत मोक्ष या निर्वाण को अधिक महत्व देती थीं । बात काफी पते की है । निश्चय ही ये तीन तत्व वास्तविक प्राधुनिकता के मूलधार हैं । मैं ऐतिहासिक चेतना के साथ एक बात और जोड़ना चाहता हूँ—वैज्ञानिक दृष्टि । यद्यपि ऐतिहासिक चेतना भी वैज्ञानिक दृष्टि का ही परिणाम है, पर वैज्ञानिक दृष्टि ऐतिहासिक चेतना या प्रगति की धारणा तक ही सीमित नहीं है । उस के और भी कई आयाम हैं जैसे यथापवादिता । इसी तरह इहलौकिकता के साथ भी एक और बात जोड़ी जा सकती है—युग सम्पृक्ति । अपने युग की भेदना । उसके बिना इहलौकिकता पगु है । और 'सामूहिक मुक्ति की धारणा' की जगह में कहना चाहूंगा व्यक्तिगत का सम्मान करने वाली सामाजिकता । इस तरह प्राधुनिकता के मूलभूत तत्व हुए इहलौकिकता और युग-सम्पृक्ति, वैज्ञानिक दृष्टि और ऐतिहासिक चेतना तथा व्यक्तिगत का सम्मान करने वाली सामाजिकता । मेरे खयाल से यही एक बसौटी है, जिस पर असली और नकली प्राधुनिकता को पहिचाना जा सकता है ।

इस दृष्टि से देखा जाय तो 'गो कविता' की इन चार धारणाओं

मे सबसे महत्वपूर्ण और वास्तव में आधुनिक कविता है नयी प्रगतिशील कविता। यद्यपि यह 'नयी कविता' का वह जीवन्त अंग है जिसके कारण सब बाह्य विरोधों और अपनी सब आंतरिक दुबलताओं के बावजूद न केवल नयी कविता अस्तित्व में रही बल्कि दृढ़तापूर्वक स्थापित भी हुई है, तथापि इस धारा के कवियों को दुहरी उर्वेधा का सामना करना पड़ता रहा है। एक ओर तो प्रगतिवादी आलोचकों ने कभी कभार उनकी स्वस्थता को स्वीकृति देकर भी उन पर अधिक ध्यान इसलिए नही दिया कि वे 'नयी कविता' के अतगत आते थे और दूसरी ओर प्रयोगवादी और तथाकथित 'नये' आलोचकों ने उनकी स्वस्थता और सामाजिकता के कारण ही उनकी उपेक्षा की। यही कारण है कि सनसामयिक हिन्दी कविता की इस सर्वाधिक जीवन्त प्रवृत्ति का सम्यक विवेचन और मूल्यांकन नहीं हो सका।

'नयी प्रगतिशील कविता' मोटे तौर पर नागाजु न, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन और उपेन्द्रनाथ अश्व जसे पुराने प्रगतिशील कवियों की परवर्ती प्रगतिशील कविताओं के अतिरिक्त नरेश मेहता, गिरिजाकुमार भायुर, गजानन माधव मुक्तिबोध, मजनीप्रसाद मिश्र, गमशेर, भारत भूषण अग्रवाल बीरेन्द्र कुमार जन, दुष्यंत कुमार और केदारनाथसिंह जैसे कवियों और बीरेन्द्र मिश्र जैसे गीतकारों की उन कविताओं का समा है जो एक ओर तो नये सौ दय-बोध और गिल्प चेतना के कारण नयी है और दूसरी ओर दृष्टि की स्वस्थता और स्वभाव की सामाजिकता मानवीयता के कारण 'प्रगतिशील'।

इस तरह से सोचा जाय तो जिस तार सप्तक से प्रयोगवाद का और जिस दूसरे सप्तक से 'नयी कविता' का आरम्भ माना जाता है उन दोनों सप्तकों के कवियों में से लगभग दस नयी प्रगतिशील कविता के, ही कवि थे यह अलग बात है कि इनमें से कई सप्तकों से बाहर कवि रूप में जिंदा नहीं रहे (और क्या वे उनमें भी जिंदा थे ?) और कई बाद में घण्टामवाणी या गिरवाणी (जस नरेश मेहता और गमशेर) हो गये। यह एक आश्चर्य की ही बात है कि जिन सप्तकों के दो तिहाई कवियों ने

अपने वक्तव्या में अपने आदर्शों माझ्मवादी तर्क घोषित किया, उन्हें केवल सम्पादक की नृमिवाओं के कारण प्रयोगवादी कविता के सफल मान लिया गया। वास्तव में ये दोनों सफल मोट तौर पर नयी प्रगतिगीत कविता के ही प्रारम्भिक सफल थे। आज भी नवयुवक कवियों की एक पूरी की पूरी पीढ़ी इस काव्यधारा का समृद्धि में अवनत योग दे रही है। 'आज की कविता', 'युगुमावाद', 'प्रतिश्रुत कविता' आदि समसामयिक काव्यान्दोलनों के पीछे भी उन्नी सामाजिक चेतना का पुनरुत्थान परिलक्षित होता है।

अब सवाल उठता है कि नयी प्रगतिगीत कविता की ऐसी शक्ति की विशेषताएँ हैं जो एक ओर तो इसे पुरानी प्रगतिगीत कविता से और दूसरी ओर नये 'नयी कविता' से अलग करती हैं ?

नयी प्रगतिगीत कविता पुरानी प्रगतिगीत कविता का ही नया विकास है इसलिए उसमें उस कविता के मूल तत्व विद्यमान हैं। इस कविता के पीछे भी वैज्ञानिक मानवशास्त्री जीवन दर्शन है। पर एक तो यह पुरानी प्रगतिगीत कविता की तरह कविता को सिद्धांत-वचन का माध्यम मात्र नहीं मानता और दूसरे यह मानववाद को किसी दृढ़ अपरिवर्तनीय सिद्धांत के रूप में नहीं, साधने और अभ्युदय की एक वैज्ञानिक दृष्टि के रूप में स्वीकार करती है। यही कारण है कि नयी प्रगतिगीत कविता का काम साम्यवादी देशों की सरकारों या अपने देश के साम्यवादी दलों की सत्ता की नीतियों का ताकीकरण या पाग्यानुवाद नहीं है। उसकी प्रतिश्रुति मनुष्यता और जनता के प्रति है स्वस्थ, सामाजिक और प्रगतिगीत मानव श्रुतियों के प्रति है। किसी दल विशेष के प्रति नहीं। वह साम्यवाद में निहित मानववाद को रेखांकित करती है और इसलिए अपने क्षेत्रों के मानववादी तत्वों को भी वह स्वाकृति और सम्मान देती है। लेकिन उसने 'प्रगतिगीत कविता' की आतिशारी परम्परा का छोटा नहीं है, यह आज भी आशा और आकाश के गिनाएँ उन्नी आशाओं के साथ सहज है, गायल और विषमता के विरुद्ध उन्नी कृता के साथ सपथ रत है।

यद्यपि नयी प्रगतिशील कविता भी अपने मूल रूप में सामाजिक कविता है तथापि उसकी सामाजिकता सपाट, सूत्रात्मक और यांत्रिक सामाजिकता नहीं है, बाहर से थोपी हुई सामाजिकता नहीं है। वह एक जटिल और जीवन्त सामाजिकता है। यही कारण है कि उसमें व्यक्तित्व के हनन की नहीं, उसके उचित और स्वस्थ विकास की स्थापना है। मरेश मेहता की एक कविता—अनुनय—से मैं अपनी बात की पुष्टि करूँगा

यहाँ वहाँ लोग ही लोग हैं
 मैं कहां हूँ ?
 तुम्हारे परो के नीचे
 मेरा नाम कहीं दब गया है
 उठा लेने दो मेरे लिए वह मूल्य है !

'लोग' अर्थात् भीड़ अविश्वकपूरण, आधुनिक सामाजिकता। 'नाम' यानी व्यक्तित्व, जो कि कवि के लिए महत्वपूर्ण है। पर इस का मतलब यह नहीं कि वह सामाजिकता को व्यक्तित्व की शत्रु के रूप में ही कल्पित करता है। नहीं। उसे लोगों की दहों से दुःख नहीं आती। वह अपने नाम के अतिरिक्त परिश्रम की गंध को भी मूल्यवान समझता है। वह समाजद्रोही 'व्यक्तित्वादी' नहीं व्यक्तित्व की रक्षा चाहने वाला समाजवादी है

आपने
 हम सब अपने अपने नाम लोज निकालें
 मोड़ों की असावधानियों से जो कुचल गये हैं
 क्योंकि वे मूल्य हैं
 अपने को जानने के लिए
 कि कब हम लोग होने हैं
 और कब नहीं।

पर नयी प्रगतिशील कविता का यह व्यक्तिगत नयी कविता के व्यक्ति की तरह नहीं का डीप नहीं है

हम नहीं हैं आप जीवन की नया क

वरन् जीवन से नरे निमत सरोवर

नले मिट्टी मे दृषा निर्माण

किन्तु मिट्टी है परिधि हो

नहीं है मिट्टी हमारे प्राण

इसीलिए वह धारा से अलग रहने को प्रयत्नी नियति नहीं मानता

ममवाय के अनियान में मिल

एक होने के लिए आकुन हमारे प्राण ।

स्वस्थ सामाजिकता के साथ ही साथ स्वस्थ व्यक्तित्र को भी महत्व देने का कारण ही यह कविता व्यक्ति की समस्याओं और उसके सुख दुःख की अनिर्व्यक्ति में बतरानो नहीं है । व्यक्ति और समाज के बीच का द्वन्द्व भी (जो विषम सांघिक परिस्थितियों या व्यक्ति की अनुचित महत्वा कांक्षाओं का ही परिणाम है) उभी त-ह इसका विषय है, जिस तरह समाधि के सामन व्यक्ति का समरण ।

एक और दृष्टि में भी नई प्रगतिशील कविता पहले की प्रगतिशील कविता से अलग है । पहले की प्रगतिशील कविता में उत्साह, उद्वेग और आक्रोश की ही अधिकता थी, या फिर यथाय चित्रण की । पर नयी प्रगतिशील कविता में एक और तो इनके अतिरिक्त एक अतमयन का कसाव और तनाव भी मिलता है । सरस दुविद्याहीनता और वैचारिक अस्पष्टपन की जगह उसमें एक जटिल सकोच, एक अधिक अनुभवो विनम्रता है । यह यति सलीब धामे हुए धमयोद्धाओं की शहादतों की बाणो देती है तो उनके शव की भी अनिर्व्यक्ति दती है, जो शहीद तो हो रहे हैं पर जिनके पास कोई सलीब नहीं है । उयने और धार्मिक धागावाद की जगह बना कनी इसमें एक गहरी और मानवीय निरागा भी मिलती है पर यह निरागा तथाकथित 'नयी कविता' की अस्याहीनता और पराजय में अलग है क्योंकि यह एक मानवीय सस्पण से पवित्र होती है । और दूसरी ओर इस तथाय का बसाव- की भी नये और अकेलारों तक पहुँचाया है तथाय के नये धामाम लोले हैं । धुविनवीय और तिरिआकुमार भापुर की उवनिप्रयो इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । तिरिआ

यद्यपि नयी प्रगतिशासक कविता भी अपने मूल रूप में सामाजिक कविता है तथापि उसकी सामाजिकता समाज गुणरमक और दीर्घकालीन सामाजिकता नहीं है, बल्कि समाज की सामाजिकता नहीं है। यह एक जगत् और जीवन सामाजिकता है। यह कारण है कि जगत् में व्यक्ति के जीवन की नहीं, उसके जीवन और स्वयं विकास की स्थापना है। नये के लिए की एक कविता—अनुभव—स में समाज की बात की पुष्टि करेगा

यहां यहाँ लोग हैं साग हैं
 मैं क्यों हूँ ?
 तुम्हारे परो के नीचे
 मेरा नाम क्यों दब गया है
 उठा लेने दो मेरे लिए वह मूल्य है ।

‘सोच’ अर्थात् भीड़ अविद्वेषपूर्ण आत्मिक सामाजिकता । ‘नाम’ यानी व्यक्ति, जो कि कवि के लिए महत्वपूर्ण है। पर इस का मतलब यह नहीं कि वह सामाजिकता को व्यक्ति के नाम के रूप में ही कल्पित करता है। नहीं। उसे लोगों की दृष्टि से दुर्गम नहीं घाती। वह अपने नाम के अनिश्चित परिधम की गंध को भी मूल्यवान समझता है। वह समाजद्रोही व्यक्तिवादो नहीं व्यक्तिवाद की रसा चाहते बल्कि समाजवादो है

आओ
 हम सब अपने अपने नाम लोग निहारें
 नींदों की असावधानियों से जो कुचल गये हैं
 क्योंकि वे मूल्य हैं
 अपने को जानने के लिए
 कि जब हम लोग होने हैं
 और सब नहीं।

पर नयी प्रगतिशासक कविता का यह व्यक्तिवाद नयी कविता के व्यक्ति की तरह नये का द्रोप नहीं है

हम नहीं हैं आप जीवन की नदी के

परन्तु जीवन से नरे निमल सरोवर

मले मिट्टी से टुम्रा निर्माण

किन्तु मिट्टी है परिधि ही

नहीं है मिट्टी हमारे प्राण ।

इसीलिए वह धारा से अलग रहने को अपनी नियति नहीं मानता

समवाय के अभिमान में मिल

एक होने के लिए आकुन हमारे प्राण ।

स्वस्थ सामाजिकता के साथ ही साथ स्वस्थ व्यक्तित्व को भी महत्व देने के कारण ही यह कविता व्यक्ति की समस्याओं और उसके सुख दुःख की अभिव्यक्ति से बतराती नहीं है । व्यक्ति और समाज के बीच का द्वन्द्व भी (जो विषम सांजिक परिस्थितियों या व्यक्ति की अनुचित महत्वाकांक्षाओं का ही परिणाम है) उसी तरह इसका विषय है, जिस तरह समाधि के सामने व्यक्ति का समपण ।

एक ओर दृष्टि से भी नई प्रगतिशील कविता पहले की प्रगतिशील कविता से अलग है । पहले की प्रगतिशील कविता में उस्ताह, उद्बोधन और आक्रोश की ही अभिव्यक्ति थी, या फिर मयाव चित्रण की । पर नयी प्रगतिशील कविता में एक ओर तो इनके प्रतिरिक्त एक अतमयन का बसाव और तनाव भी मिलता है । सरल दुविधाहीनता और बधारिक अरलक्षण की जगह उसमें एक जटिल सकोच, एक अधिबधनुमथी विनम्रता है । यह यदि सलीब यामे हुए धमयोद्धाओं की गहादतों की बाणी देती है तो उनके ढव की भी अभिव्यक्ति देती है, जो गहीद तो हो रह हैं पर जिनका पात कोई सलीब नहीं है । उससे और धांत्रिक आगावाद की जगह कभी कभी इसमें एक गहरी और मानवीय निरागा भी पिसती है, पर यह निरागा तयाकथित 'नयी कविता' की अस्थाटीनता और पराजय में अलग है, क्योंकि वह एक मानवीय सत्य से दवित्र होती है । और इसी ओर इतने सपाय के बराबर की भी अदे और अके सारों तक पहुँचाया है यपार्य के नये आयाम खोले हैं । धुनिबोध और गिरिजाकुमार भापुर की जनविमयी इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं । गिरिजा

अनुक्रम

मृत्युञ्जय उपाख्याय

व्यवस्था	३
मैं भी	८
बटा मग	५
मानवता	६
गान्धिराज	७
नासगी	८
पाप मूख रू है	९
वान ?	१०
युग गिरिनि	११
अग आ डिन्गो	१२
अन्तु निन् गुण	१३
नती पाण बी	१४
तुम	१५
धमा निरेन्द	१६
गीत	१७

निरञ्जन महावर

२१	नरनरी
२२	बेदुनी में गम में
२६	मर श्रीर अय नागा व बीच
२७	घप के पाव
२७	आता न मैं
६०	क्षयम्न
६०	माचन पर विवग हू
११	तुमनी टुट गों
१६	तना ही जावन
५५	वियवनाम

श्यामसुन्दर घोष

गुरु का प्रेम	१८
फिर स्थिता पर घरा झगार	६०
गाम गव एभ्रगव	६१
मनाया	६२
कुठ भा हा	६
गुरु का गुरुज	६४
जाखिरा सिक्का की दगावत	६५
प्रनामा ६	६७
एक निरण	६८
प्राप्त-वत ८	६९
सलामा दा	७०
नए गिणु का जम	७१
चत्रा ता रना आधा	७३
जाह्दान एह मन स्थिति	७५
दा पारिदा की व्यथा	७७

कुमारेन्द्र पारसनाथसिंह

बहिष्कृत मलय	८१
उत्तराधितार	८२
सोया हुआ जगन	८४
दण्ड	८६
अन्तर्गत	८८
ह	९०
गुराज	९१
बल फिर	९५
कूप	९७
विनारा	९९

जुगमन्दिर लायल

धूप-नात	१०२
मूग मर दगा ह	०६
घाट ती पनी	१०६
सिरीप का गम	१०७
अनवर	१०८
सन	११०
पनायन	१११
रचना म पूव	११३
प्रमिदा	११४
यन्त्रिच	११६
जिन्गो	११७
नाया	११८
५ व मन्वया	१२०
युद्ध के मार का मरद	१२२
विजय के बाग	१२४

सजित पुठकल

देग	१-६
अ ग म ग म ओ ग आयन	१२०
अभियक्ति	१२१
ममय	१२२
ईश्वर	१२६
एक नाम	१२८
आवाग	१३६
प्रत्यागा	१६४
एनाके की प्रतीता	१६५
कितना धूमिल ह	१४७

राजीव सक्सेना

अस्तित्व	१५५
मैं तुम्हें क्या दूँ	१६०
एक पुराना मन्त्र में	१६४
वितुष्ट पीढ़ी का गीत	१६७
रात पढ़ने पहर में	१७२
एक और दिन	१७६
क्या कोई अर्थ है ?	१८१
आराम निर्वागिन	१८३
मूल	१८६
द्विमतवाग	१९१

रसाजीव

पृष्ठभूमि	१९५
विष-मुरप	१९७
पीत प्रता की बस्ती में	१९८
माध्यम	२०१
पाउम क कण्ठगत	२०६
मंरेत्रिा मनरा का प्रतिम पत्र	२०८
मरे आसपास के लोग	२१०
एक हिन्दुस्तानी लडकी	
अपने मन से	२१३
य सपने ये प्रेत	२१५
एक विराट् पवित्रना	२१७
वफ गिघनन के बात भी	२१९
सकटनाम्ना के गिनित	२२१
कमका मैं क्या करूँ ?	२२५
इतिहास का रूप	२२७
प्रतिधति का गीत	२२९

मृत्युञ्जय उपाध्याय

व्यवस्था

रात

पेट पर रख हाथ

गिन रहा तारे

यह यदस्वी देश

सम्मुख सड़ी दर्परा के

व्यवस्था

वैशरम

सुनभा रही है वेद ।

में भी

घना जगन रास्ता दुर्गम मदानें जन रही हैं

अंधेरा चीरते

सधे पावों,

मुद्विर्याँ ताने

बढ़ रहे लाखों-अरोंड़ो लोग

लम्बा युद्ध लड़ने को ।

में भी

कलम का एक छोटा सा सिपाही

धल रहा हूँ साथ

दे रहा हूँ दस्तकें—हर द्वार पर

खून जो सोया हुआ

उसको जगाने को ।

बेटा मेरा

पिता ने
पहाड़ों को काटा,
जगह साँझ किये
सेत जोते
मिलो का धुर्जा पिया
मर गये

तिलमिनाया
मैं,
उतर आया आँसू में खून
उठायी कतम
तिसे
कुछ गीत कुछ कविताएँ

सीना फुना
कहता है बेटा मेरा
'बाबू जी सीखी है मैंने बटुक
आप भी सीखेंगे ?'

मानवता

उतस उजाड़ ऊँचा
रेतीला टीना
बबूल की निपट नगा सूखी टहनियों पर
हाफते
सफेद
सफेद
कबूतर

सहमा घाती से चिपका
दुधमुँहा शिशु
उजड़ी जास उतमे बाल
अधनगी औरत
आकाश में मँडराते—
गिद्ध
बस गिद्ध

चीस
और फिर—
होठो पर
सोरी

शांति-वार्ता

पाँच चासीस पर—

मेज है असुवम है चाय के प्यसे हैं
राजनीतिज्ञ हैं बहुत सी फाइलें हैं
सड़क है सवादादाता हैं फोटोग्राफर हैं
सोग हैं विकसी हुई आँसों हैं

पाँच उनसठ पर—

न राजनीतिज्ञ हैं न फाइलें हैं
न सवादादाता हैं न फोटोग्राफर हैं
मेज है असुवम है टूटे हुए प्याले हैं
सड़क है सोग है बुझी हुई आँसों हैं !

नौकरी

इब्राहिम की दुकान से बोड़ी खरीदी नहीं
शिवपुजना के हाथ की गम चाय पी नहीं
उड़िया की दुकान का घुड़ो पान खाया नहीं
शीशे में सूरत देख तनिक मुस्काया नहीं
बगल से गुजरती लछमनिया को देखा नहीं
चटकल की धनो को विरहा सुनाया नहीं
हसन की बिटिया को गोद में उठाया नहीं
उदास खड़े महगू को हँस के बुलाया नहीं
टिबरी जलायी नहीं चूल्हा सुतगाया नहीं
घूट गयी नौकरी, किसी को बताया नहीं

पापउ सुख रहे हैं

दादता पर भाँसैं टियाये
उदास बैठी है
मेरो पड़ीसिन है ।

दिन भर पापड़ देखती है
धरानदे में लैटे वोमार बूढ़े से भगड़तो ह
कोस की कोसती है
बहू को गालिया देती है
सपने देखती है

आधी रात गये—

आसमान साफ है
सूरज चमक रहा है
पापड़ सुख रहे हैं ।

कौन ?

सि दूर पर हजारो का नाम
होउ पर भठत्री की चमक
गर्भ में अज्ञान पिता का भ्रम
फेफड़ो मे टी बी की गमक

—एक रुपया

—नही, दो रुपया

कौन ?

सीता ?

सावित्री ?

दुग-स्थिति

ज्यों ही धरती
बहरों का आकाश
दोनो के बीच
गुँगों की नाश ।

भरो भो जिन्दगी

पसीना
प्यास
घाते

पकड़े रह हाथ
भरो भो जिन्दगी ।

तेरे जूड़े मे
गुलाब टांकूंगा ।

बहुत दिन हुए

सपने जोड़ते,
उगलियो पर दिन गिनते
घुटनी पर हाथ धर
हवाओ के स्वर सुनते
धुर्रें में घुटते
इशारों से बोलते

बहुत दिन हुए दोस्तो ।
बहुत दिन हुए

मानो तो कहूँ

तोड़ो यह चुप्पी
छोडा यह टोल
भ्रम तो पथ मोड़ो
बहुत दिन हुए
दोस्तो ।
बहुत दिन हुए

नदो याद की

हँसी हुई
पलट कर देखा
तुम नहीं
थी
नदी
याद की

घाटिया से
उग्र की
बहती हुई

तुम

बलास की बेंच पर

सुदे दो नाम

पास

बहुत पास

पढ़कर

कुछ ने कही कहानी

कुछ को सूझा परिरास

धुन थी

सिर्फ एक तुम

यादा में छुबी

उदास

बहुत उदास

शामा-निवेदन

घु गई बाह ?
दूर दूर मा देखो
क्या नहीं हूँ
दर सन भयेने चरना नहीं आता ।

भादत
लोगा को हँरते देख
हँसने की
रोते देख
रोने की

माफ करना
गलती हुई
हँस पड़ा तुम्हे भी हँसते देख ।

दुख गया तुम्हारा मन
सुनकर मेरी बात ?

माफ करना
फिर गलती हुई—
जो चाहता हूँ मैं
वह कहना नहीं आता ।

गीत

देखना नऽ सूरज
वीनना नऽ गेहू
फूल सी आस कुम्हार्येगो
जाती है, जा
दुबती हा मन जाना ।

कूटना नऽ धान
पोसना नऽ जी
दूव सी वार्हे पियरायगो
जाती है जा
सावन में जा जाना ।

सीपना नऽ आंगन
माजना नऽ वामन
चाँद सी हथेरी करियायेगो,
जाती है जा
गोदी में चदा ले आना

घु गई बरि
 घुर घुर म
 अधा मही
 दर सल ष

आदत
 लोगो वी ।

माफ करन
 गलती हुई
 हँस पड़ा

दुस्त गया ।

माफ करन
 फिर गलत
 जो चाहा
 वह c

निरजन महावर



अजनबी

जयनी अपनी जाइ पर
सब जम गये हैं ।
—पराइ नदियों गाँव
ग्लेशियर हवा मोड़
रास्ते और घोरस्ते
यह समूदा आत्मान
और इन पर तैरते तारे
सब धम गये हैं ।
जाँकों में धमे हुए दृश्यों में—
वह मैं हूँ
जो टूटकर सितारे का स्रक्टा हूँ ।

दसों दिशाओं में एक ठहराव है
इस ठहराव में
जब बुत्ते भीकते हैं
या मोर द्वारवालों की तरह
बयेउ हू बयेउ-हू बरते
चौक पड़ते हैं
जजनदी वह में हू
जो हवा में तीर बन कर सरसराता हू ।

कचुली में गर्भ में

बहुत चाहता हूँ—सूर्य होते दिन को
समय की नदी में सिरा हूँ
और हर नये दिन को नये पुष्प सा
भागन बीच खिलते देखूँ
किंतु ज्यो ही सूरज डूब जाता है
मन उब जाता है ।

तारीख बदलते समय
मेरी अगुलिया सुन्न हो जाती हैं
और मन कंचुली में लिपटे हुये साप सा
घटपटाता है ।

सागर के वक्षस्थल पर
दौड़ लगाते हुई लहरो को बनते-विगड़ते देखकर
लगने लगता है कि
जीवन कितना निरसीम और निस्संग है ।

बहुत चाहता हूँ
धरती पर दूब सा रच जाऊँ
और जमाने का संपूर्ण दुःख
मुझ पर जोस बनकर बिघ जग्य
ताकि भविष्य के चरणों को
शीतल और सुसुद जमीन मिले ।

म जप तो दान

दिशागा जो और फेरना क्या सो सड़ा हूँ

कि वर आशाशु मुझमें समा जाय

और दादना के नर्म गर्म दुग्ध डे

मेरे जनते हुए नेगा जो नम कर दें ।

हवा जाये और मुझे

पीयन की नयी विल्लुन नयी खोरन

सा हिता दे ।

यही तो कोई सरकराट हो जो

यह दु स्र वम कर दे ।

में आकाश म उँचा ऊँचा उड़ कर

उसे अपने वीमल पक्षो से धू लेना चाहता हूँ

पर वह और भी दूर चला जाता है

और तब म उस सुख से अनुभूत नहो हो पाता ।

में वादतो को पकड़कर

अस्पतालो तक ले जाना चाहता हू

कि करुणों उ ह द्रवित करदे

फूला को

बच्चा के पीले पीले चेहरो मे घोल देना चाहता हूँ

बहारा को सडवा पर

माँड दू तो कितना अच्छा लगने लगेगा

यह शहर ।

म पुष्प की तरह खिलना चाहता हूँ

लेजिग धूप परस नही देती

लेकिन जायाश मेरी दाहा म स
सरक जाता है ।

सहरा की तरह दौडना चाहता हू तो
सागर वाप्य बनजर उड़ने लगता है ।

बहुत चा त हूँ कि सुनकर हँसूँ और हँसी को
उदास चादनी रातों म ररगो के खेतो सा रोल दूँ ।
लेकिन म इन स्व से वाचित रह जाता हू ।

यू तो अब भी बहुत लुध
वकाया है । अब भी मैं भीड़ मे धिरा हूँ
पर भीड़ कोई धूप तो है नही कि खिल जाउगा ।

असपृक्क रह जाता हू
खिल नही पाता हूँ

तब मेरा मन
गर्भ मे पूण विरक्ति दिगु की भाति
छटपटाता है

उफ । इस धरती को कितनी पीड़ा होती होगी ।
वह मुझ ए म क्या नही दे दती ?
इस तरह कोस मे कब तक टोयगी ?
काश यह भीड़ भी काई सूर्य होती ।

मरे पार अन्य लोग के बीच

यह नही कि आनाश अद
उतना नीला नरा रटा
यह भी नही कि
फून अब टतने चटस नही होंगे ।
हवा अब भी प्रचलन है
और धूप में अब भा उडरता है ।

इस पृथ्वी से पृथक
मेरी कोई पृथक् नही है
न ही इस समाज से पृथक् कोई समाज ।
न कोई अलग लोक है न वही अलग दुनिया ।
न तो मेरी कोई भि न इक ई है
और न ही कोई अस्तित्व ।
फिर भी एक विचार दार-दार
मुझमें कांधता है—
कि कुछ है जो मुझे इन सब स्थितियों से अलग करता है ।

विवेक जो अब भी मेरे साथ है
मुझे सोचने पर विवश करता है—
कि मेरे और अन्य सब लोग के बीच का स्थान
एक बहुत बड़ा शून्य बनकर रह गया है
और एक पृथक सब सत्ताहीन इकाई के रूप में

जोने के निश में विवश कर दिया गया हूँ ।

इस शूय के उग पार

में अब भी

मकानों की, सड़का की

और अनेकानेक भागती हुई आकृतियाँ की भीड़ को
देख रहा हूँ ।

उनकी आवाज मरे वाना तक पहुँचत-पहुँचते

हलत। बन जाती है

और उनका प्रत्येक आनन्द

हवा को मथती हुई विभिन्न आकृतियाँ के समूह को दौड़ ।

सगता है

ये आकृतियाँ मेरी परिचित हैं

और इस हलते में छुते हुए शब्दों के अर्थ

कभी मैं समझता था ।

न जाने

कितना समय व्यतीत हो चुका है इस बीच ?

यह भीड़ अब

धिस-धिस कर जितनी धुँधली हो चुकी है ।

सोग महज चन्दी भरी हुई रिप्रागदार आकृतियाँ का

समूह मानूम होते हैं ।

इस हलते के जिस शब्द को

मैंने माँ के मुँह से लोरी में सुना था ?

और जिस शब्द को

उच्चरित करते मेरी प्रियता के मुँह पर

अग्निम जलमा जा गई थी ? मुझे कुछ भी याद नहीं !

मेरी परछाईं ता-
 मुझे लख रिश्ता गतो ह ।
 लगता है मेरी स्मरण-रिजुता ही जा रही है ।
 मैं तयात्रिय । गनवात्र य य-य-यार्थ
 और छुत य दर भीर गिजा के
 याय-य-यार्थ के फर्क दो भी भूत चुगा ह ।
 क्या इनमें पत्ते
 कोई भूत फर्य रहा ह ?

ओ । मुझे बुध भी ता दाद नरा जाया ।

टिक टिक टिक बी यह ध्वनि
 छड़ी की है
 या मेरी धड़नन ह ?
 कमरे मे गू जनी हुई धाटात्र को
 पहचानने का प्रयत्न करने पर
 आश्चर्य होता है बि दह मेरी अपनी ही आवाज है ।
 कभी-कभी मुझे लगता है
 कि म आवाज म धना हुआ एक पर्वत शिखर ह
 और इस आतराल मे
 न जाने बर्फ की कितनी रतते
 मुझ पर जम गई हैं ।
 न जाने मने इस स्थिति में
 कितना समय घाट दिया है ।
 निर्लिप्त होने के अतत प्रयत्न म आखें मू द

न जाने मने इस स्थिति में कितना समय घाट दिया है ।

माथे पर किसी हथेली का स्पर्श अनुभव कर
जब बंद नेत्र खुल जाते हैं
तो देखता हूँ कि कौन
मेरी ही हथेली है सुरदरी और उपशताहीन ।

धूप मेरी आँसुओं में भर जाती है
जमी हुई बर्फ पिघलने लगती है
और मुट्ठियाँ खोलती ही
आकाश मेघाच्छादित हो जाता है ।
हल्की-हल्की फुटार में
इन्द्रधनुष बनते हैं और मिट जाते हैं
उस समय वहाँ मेरे सिवाय और काँई नहीं होता ।

धूप के पात्र

उया यात्र के साथ मेरा
यात्रा आरम्भ होती है
और मैं धूप के पात्र
का पीछा करता
एक निरंतर पथ पर आगे आगे
बढ़ता ही जाता हूँ ।

विरल गति से बढ़ने जाते हैं
धूप के पात्र
विश्रान्त-रहित पथ होता जाता है प्रशस्त—
नगर-नगर, गाँव-गाँव ।

यह अनन्त पथ
जिम पर सध्या एक विराम की तर
आती है और हर विराम
एक नया आरम्भ बनकर आग्रसर होता है ।

इस दुर्गम पथ पर
मैं अपने प्रियजनो अपने सह-यात्रियों को
सूत्रबद्ध करने के प्रयत्न में
बिखर बिखर जाना हूँ ।

उनके साथे धूप के पात्र की अग्नि पताकाए
वायुमंडल में विनगरिया की तरह तैर रही है ।

सँजोधा-सुभाना न गथा
 तो पराजकता रौदकर जाहे
 राख कर देगी ।
 इसके पूर्व कि सूर्य अवकारमय हो ज ये
 नक्षत्रों में विस्फोट हा
 और ग्रह अपने पथ से
 विवर्तित होकर आपस में टकराने लगे
 में अग्नि का मज सँभाव बन जाना चाहता हू ।
 नावो के पान सोन
 हम नये-नये द्वीपों की सौज म
 चल पड़े । समुद्र को तूफान की तरह रौदते
 क्षितिजा को काट-काट कर
 समुद्र की अतन गाराइदा म फरते
 नये भूख डो म प्रकाश क बीज बाने निरत पड़े ।

हमारे देग से टकराकर सीमात
 पागल हो उठे
 अधकार क आवरण को हमन
 तज धार बन जाइया से चीर दिया,
 जाना की लट
 साफ होता गया अन्धकार ।
 नये भूख लों न हों
 अपनी दाँहा न मेट दिया ।

हमन अन्ध धना ही मति का उदास—
 हौमने बुन द थे । लुट जाये ।
 वो चीर कर मन ब्रह्म उपासना गये ।

सूर्ज को तरह प्रकाशित १११ लीर
 पृथ्वी का तर च ता थो लीर ६२ वरिक्तानि लु
 हम रे ५५५५ ५५
 प्रनोशा म ५५५५ ५५ ५५ ५५

[२]

इस पथ पर
 क्षाति स्वापनार्थ अनक सडाइया
 सडो जा री ए
 रत-रजिा टूटी लन्घने चारा और
 दिगारा पडो ।
 अर्सेय अस्मय ५ के
 ताशो के टेर पर ५५५५ पडो । ।
 नष्ट हुई सम्पत्तय
 भयावह निर्जन दूर का गर्द हैं ।
 पराजित निन्त्ये लोका को सनस्ती से
 पीट-पीट कर दास बनाया जा रहा है ।
 और यह पथ निर्जीव तीहमट को तर
 पड़ा रुव सह रहा है ।

मैं चलता ही जाता हू इस
 निर्जीव पथ पर कि
 कही किसी तितिज पर शुभ का अरम होगा
 और नारकीय यातना की अनेक चट्टानें
 विस्फोट में उड़ जायगी ।
 मार्ग की अनक काली अनेक चट्टानों को काटकर
 हमन सुरों निकल
 अपन से विनाग होने होने प्रनाश को पुन पकड लिया है ।

हमारी आदिम चेतना ने
 गुहाआ से इसलिये प्रस्थान नहीं किया था
 कि वह चलकर पुन गुहाओं में भटक जाय,
 हमारा अस्तित्व रुकट में पड़कर
 अराजकता को जन्म दे
 पड़ोसिया द्वारा ही पड़ोसिया का वध हो
 अपनी उद्दाम वारुणा की नारकीय साइया में गिरकर
 हम निरस्त हो
 सड़का पर
 उन्मादित पशुआ की भांति विवरण करें
 रक्तभेद-वर्णभेद में उलभकर
 वधवा की नेत्रों पर उछान दें ।
 मानव मात्र भीड़ बनकर रह जाय और
 हर नगर
 इट चूना सीट और विनियोगों का
 एक सौदा सगने लगे ।
 हमारा आदि-पूर्वज जय प्रथम बार
 अपने मेरुदण्ड पर तनकर खड़ा हो गया था
 और हम गुहाआ से निकल आये थे—
 हमारे नेत्र प्रकाश में चौंधिया गये थे
 वही से प्रारम्भ होता है यह पथ
 जोड़ इस यात्रा के आदिम छोर पर
 समय या मुस इतना रगता नहीं लगता ।

[३]

इस महायात्रा में
 अनेक राजमार्ग पथ और पगलट

प्रतिष्ठा पीढ़ी :

जा या कर समाहित होते जाते हैं और यह पथ
विकसित और विस्तृत होता जाता है ।

पथ के किनारे-किनारे

अनेक शिविर गड़े हुए हैं, जिन पर
पताकाए फहरा रही हैं ।

पताकाए ।

रगबिरगी पताकाए । मोटे मोटे हरफों में
जिन पर नाम लिखे हुए हैं ।

(या) प्रतीकात्मक संकेत धने हुए हैं ।

इनमें से

बहुत सी पताकाए षटने लगी हैं ।

बहुत सी पताकाए फटने लगी हैं

और बहुतों के रंग

उड़ने लगे हैं

और बहुतों पर लिखे हुए नाम

मिटने लगे हैं ।

चलने-बलने में

कई दार थकावट महसूस करता हू ।

मेरे सहयात्री भी थक जाते हैं ।

थके हुए लोग

इन शिविरो की ओर भागते हैं,

उनमें घुस जाते हैं और

पताकाए फाड़ देते हैं ।

लिखे हुए नामों पर

कोचड़ उछालते हैं, कालिख पोत देते

और अपने नामों की

नयी-नयी पताकाए गाड़ देते हैं ।

मैं थका-भाड़ा, लनचाये नेत्रों से
 इन शिविरों की ओर देखता हू
 और किसी शिविर में
 रुक खिगाना चाहता हू ।

तभी सूर्य में विस्फोट होने है
 पृथ्वी मेरा जागर मरी जड़
 खोलने लगती है
 हवा में प्रश्न उखलते हैं,
 दिशाओं से आवाजें आनी हैं—
 ये स्रेमे तेरे नहीं हैं
 ये मजितें तेरी नहीं हैं
 ये उपनद्विष्यां तेरी नहीं हैं ।

तब मैं रुड़क किनारे
 किसी वृष्ट तने
 थकान म्हाड़ना हू,
 रातें फाटता हू, और बट्ट जता हू—
 अपने सहयात्रियों को टटोन्ता हूँ रूतदद करता ।

मैं बट्टता ही जाना हू
 मुट्टिगों में एक सक्न्त्र दवार,
 हृदय में शैतिलस्त्रिय पीड़ा की जनि सत्र दे,
 कि जब तक रोप है दृष्टि—
 घन्ता ही जटगा । बट्टता ही जटगा
 और जहा थक्कर गिर जटगा
 और हूहूगान ही सदाहीन हो जायेंगे मेरे रेर
 हाथों की जगुन्धियां गल-गल कर गिर जायेंगी

और जब मुझसे आगे यतई नहीं बढ़ा जायेगा
 तब मैं
 पेट के घन यहूनियां टेज टेक रँगू गा,
 दांत और नासूनो को धरती में
 गाड़ गाड़ घिस दूंगा और
 अन्तिम स्वास के साथ वही वही बिखर जाऊंगा ।
 मैरी यात्रा में पथ हैं चौराहे हैं
 विभ्राम के लिए पड़ाव हैं, किंतु मजिनें कटी नहीं ।

इतिहास ने मुझे दृष्टि दी है
 धूप के पावा से लिपटी हुई
 सभ्यता और सस्कृतिया के सग में
 विकसित हुआ हू खिना हू, जिया हू
 और इस अधकार के उस पार
 भविष्य के गर्भ में छिपे हुए
 प्रकाश को मेरे नज़
 आतुरता से ऽणोर रहे है ।

आता हूँ मैं

तुम्हारे सुसज्जित नगर के
वायुमंडल में आज
जयघोष तैर रहे हैं
स्वागत द्वारों में सुत्रुस बढ़ रहा है
चप्पलें चटकाता इस रेल के पीछे-पीछे
आता हूँ मैं ।

मेरे लिए
कहीं भी नेत्र नहीं चमकते
स्वागत के लिए कहीं कोई हाथ नहीं उठाता
कहीं परिचय की मुस्थान तक नहीं
भयनी पतलून की जेबा में सुरक्षित
अभीत का सौटा सिद्धा टटोल्ता,
टूटी चप्पलें चटसाता
फिर भी भ्रता हूँ मैं ।

आकाश में तैरता
सदिना वादन एक जिन्दा तारा
जिह्वक लिए किसी को न चुदी है
न किसी को कोभतें ।

फिर भी इस नगर की धूप में
एक घाटा की तरह मैं

पैठ गया हू ।

कितनी नीरवता है इस योताहन में ।

जघघोष नारा और उहापोह में

रगती अपनी धड़कना को

यानो पर टकरात महसूस कर रहा हू ।

तुम्हारे डाइग रूम में मौन बनकर

अब भी जाना हू मैं ।

उदासी तुम्हारे शेशो-आराम पर छा जाती है

उस तण धरती का समस्त रे-वर्ष भी

तुम्हें मेरी घाया से नहीं उबार पाता ।

तुम्हारे सपना में मैं

एक फूके हुए पत्थर की तरह आ गिरता हू

और भनाकर काच के टुकड़े

फर्श पर बिखर जाते हैं

मेरे अट्टहास से तुम कांप जाते हो ।

चीख सुनकर तुम्हारी वगत में सोयी हुई

मेरी प्रेमिका तुम्हारे शिशु की जननी

करम ठोक कर जिदगी को कोसती है ।

पालन में भूलते तुम्हारे शिशु से

वह चिपट जाती है

तब जाकर कही उससे रुकून मिलता है ।

क्योंकि उसके स्तनो पर टिप टिप करती

तुम्हारे शिशु की धडकनो में — मैं

अब भी जागृत हू ।

उसकी खोई-खोई आसो में

मैं अब छुब चुका हू

नीली-गहरी झीलों में छूटते
मस्तून जमिनायाँ सपने
तुम्हारे शिशु के रूप में
युग का अंतिम और एकमेव सपना बन
फिर भी आता हूँ मैं ।

अवृत्ति हूँ व्यथा हूँ मैं
भग्न आशाओं की कथा हूँ मैं
तुम्हारे नगर की धूप में रेंगता
तुम्हारे सपनों में जागृत
तुम्हारे शिशु में धड़कता
भव भी आता हूँ मैं ।

क्षयदास्त

हमार पैरा मे थकान रम गई है
हमार फजर कदम उगमगान सगे हैं
हमसे अत्र और नही चला जाता
हम पथा से पूछत हैं—
मजिले यहाँ खो गई है ?

हमारो पलको पर दद की पतें जम गई हैं
हमे अब कुछ नही सूभता
हम क्षितिजो से पूछत है—
सवेदनारै कहां खो गई है ?

पपडियाय हुय ओठा यो हम जीभ से सिक्कत करते हैं
किंतु अभिव्यक्तिया शिथिल हो चुकी हैं
हम हवाआ से पूछत हैं—
अनुभूतियां कहां खो गई है ।

हमार कानो मे शोरगुल और चीत्कार भटक गये है
चारो ओर श्मशान भूमि की नीरवता है
हम दिशाआ से पूछते हैं—
सगीत कहां खो गया है ?

मर अंदर बाहर आजू वाजू हर तरफ एक धुवों उठ रहा है
मे कडुवाय हुय नत्रो से

घुन्ने हुए दृश्यों में डूबनी हुई मोनारे दस रहा हू ।

घुन्नी हुई मोनार

मजिनों की, सत्रदानों की, अडुभूतिया की मञ्जीन की ।

हमारी स्थापनाओं के शिखर धुँवें न डूब गये हैं

और हमारे मूल्यों पर काजिस धुत गई है ।

[२]

हमार हाथा में अनास्था सज्जे की तरह दड़ती जा रही है ।

हमारे नखून खर्ज-यता के कुष्ठ से गल-गलकर गिर रहे हैं ।

हमारी सज्जे

घिंटस-घिंटस कर सडकों पर सपों की तरह भाग रही है ।

हमारी परनिशां हवा-मे आतिशबाजी की तरह उड रही है ।

हमार फफड़े मिट्टा की तरह

सुदूर आकाश में लाला की तनाश में उड़े जा रहे हैं ।

हमारे मेरुदांड टूट टूटकर वैसाक्षियां बन लगड़े युग को ढो रहे हैं ।

हमारी अतनाय भूरा की तरह

बदर-दिग्गु ॥ द्वारा चीधी जा रही है ।

हमार हृदय सर्वस्वकारक विस्फोटना को

बड़े-बड़े राकेटा की तरह ढो रहे हैं ।

अदिम स्मृदन के गर्भ में सुरगे लगाती है ।

हमार नत्र रउर य आ थी भाति युद्ध का रुचानन वरत है ।

रुद्धों पर घरा मे दफनरा में, दर्शन की जितावो में

फटो हुई जेवा में और गप्प्रा की सफदा में

पथर ई हुई आसा मे आयादा पर और स्मुद्र के गर्भ में

दिलो में दिवागों मे घाने कि हर जगह

हमारी महत्वाकांक्षा ॥ के बीच अनवरन युद्ध लड़े जा रहे हैं ।

एक धमाके के साथ विस्फोट मे

हमारी स्मृता का विनास

एक विशाल गुम्बद की तरह उड़ जाता है ।

पवतो क आपस मे टकराने की गर्जना मे —

विद्युत् की कौध की तरह

प्रकाश क अन्तिम दर्शन होते हैं ।

अग्नि का सौताव दिशाभा मे फैन जाता है ।

मशकूत समुद्र क्र दन करने लगता है और अट कार

प्रमत्त पृषदश की भाति स्मुद्र को मथ कर दलदल बना देता है ।

हरियाली जनकर राख हो जाती है

और नदिशा का जन शर्म से गदता हो जाता है

क्याकि करुणा क सोता से

स्याह विप्रेला रक्त प्रव हित हो रहा है ।

हमारे हृदय दगो मे उलके हुय नगरो की तरह उजड़ जाते हैं ।

स्मृताए देखते ही देखते दूह बन जाती हैं ।

विशक्त धुरे का बादल फैनता जाता है

और उडते हुय पथी उसकी चपेट में आ—

भुलस भुलस वर गिर पड़ते हैं ।

दिशारें भय से काप जाती हैं ।

फिर भी हम लड़ते हैं
 क्योंकि युयुत्सा की जडा का जजाल हमारे आमाशय से होकर
 मस्तिष्क तक फैल गया है ।
 हमारी भूख ही हमें तील रही है ।

प्रत जो पत्तियों का कतरव बन हमारे आंगन में चहकती थी
 नगर के चौक में मृत पड़ी है
 और रुधिर
 पराजित जाति के ध्वज की तरह क्षत-विक्षत हो गई है ।

हर तरफ धुवाँ है
 और मैं बुझने हुए नेत्रों से
 घुबते हुए दृश्यों में घूबती हुई मीनार देख रहा हूँ ।

[४]

समुद्र के गर्भ में पनडुब्बी भटक गई है
 और मेरी खोपड़ी खोखली हो गई है ।
 विस्फोटकों को टोता हुआ मेरा हृदय
 दुर्घटनाग्रस्त हो गया है
 और मेरी छाती में शून्य घनीभूत हो उठा है ।
 ऊँचे हुए परिदे मेरे नेत्र
 चेहरे को पुते हुए कवास की तरह घेड़कर
 सुदूर आकाश में उड़ गये हैं
 और मेरे माथे में रिक्तता गहरा आई है ।

इस शून्य की पत्तें उड़पाटित घर
 में उसे अनमून करता हूँ

शून्य के ऊपर शून्य

और फिर शून्य

और फिर शून्य

अधकार पर अधकार की तहो सा जगया शून्य :

इस खोखलेपन में

में इस किनारे से उस किनारे तक दौड़ लगाता हूँ ।

जैसे एक तट से उठी हुई लहर समुद्र के वनस्थल को
रीदती हुई दूर तक तट तक पहुँचती है ।

क्रुद्ध वनपशुओं की मेरी आवज

इस अनंत शून्य के बूँह की प्राचीरो से टकराकर
बिखर जाती है ।

मेरी निस्पृह हँसी सम्पूर्ण आस्था को भकभोर कर

मेरी पवित्रता को नग्न कर देती है—

पवित्रता अवास्तविक एवं अयथार्थ ।

निरीन्द्रिय और निरपेक्ष

मेरी चेतना अभेद्य चट्टानों से टकराती है

और मैं होश में लौटने लगता हूँ—

काई के लीदे सदृश्य मेरा हृदय स्पन्दित होने लगता है ।

और सपूर्ण यातना पुष्पोद्यान की तरह खिल उठती है ।

नेत्र विहीन—

फिर भी मैं प्रकृति के रंगों को भोगता हूँ ।

कानों के पर्दे चीत्कारों से फट गये हैं

फिर भी लहरों से उठते हुए सगीत से अभिभूत होता हूँ ।

टूटी हुई टांगा से दिशाओं को महसूस करता हूँ ।

ध्वस्त भुजाओं से आकाश को टटोलता हूँ ॥

हर तरफ धुवा है

धीरे में कड़ुवाए हुए नेत्रों से

धुलते हुए दृश्या में छूवती हुई मीनारें देख रहा हूँ ।

सोचने पर विवश टू

शक्तिशाली मेरुदंड पर तनशर झड़ा हुआ
सूर्य को अर्ध अर्ध करत मर पिता का कृत्विगत्व
योद्ध से भुक्ने भुक्ने को हो रहा है ।
समय को मर स उनकी त्ववा उधड़ रही है ।
योद्ध अनुश्रवा दद्रता ही जाता है ।
मेरे मायम से निर्मित इन्द्रधनुष एव
उनके नेत्रा मे धुंधले पड़ते जा रहे हैं ।

यह सब सोचने पर मे दिवश हूँ किंतु जब सोचने लगता हूँ
तो चेतना साथ छोड देती है ।

[२]

मे बडी-बडी वातो से ऊब चुका हू
दु खमरी गाथाओ से भी मे उब चुका हू
उपदेशको को अपनी ओर आता देख
हृदय की धड़कने दद्र जाती है ।
शुभ वितक जहर पीकर पवाने को सलाह देते हैं ।
वे कहने हैं यह तो सनातन है,
सर्वव्याप्त हैं,
'दुख हमको मांजता है उनके लिए दुख
यक फौशन है फरुफा है ।

य सामाजिक अभिशाप उनकी मानसिक अंध्याशी
और मनोरंजन के साधन हैं ।

सच उनके भद्दे नासून
त्रिपट्टिपे नेत्र और पोने-पीने दातों का देखकर
में स्वप्न में भी मथ से चीख पड़ता हूँ ।
आह मैं तो अभी सित भी नहीं पाया हूँ
और मेरी सुष्टमर मुट्टियों पर दफ़ पड़ने लगी है ।

[३]

हर तरफ़ अभाव है, अतिदय है, उट्टना है अनास्था है ।
सागर बाष्प बनकर उड़ गया है
और मरी नाव रेत में धम गई है ।
सहायतार्थ कानर नेत्र जाते हैं
सोगों की बनी हुई मुट्टियों में सिर्फ़ आसू हैं
और बुझते हुए दिता में विने हुए स्तुति स्वर ।
आह ! मेरी नाव रेत में धम गी है
और विन्विनाती धूप के उस मार
बनती हुई मरोचिका में
मैं अब भी दूर कही ठगा जा रहा हूँ ।

[४]

मैंने उनसे अनेक बार कहा है
 कि वे बकवास बंद करें ।
 जब वे खामोश होते हैं—तो मने लगते हैं ।
 अजायबघरा मे मैंने उनका पुत्र देखा है ।
 न मानुम लोगो को क्या हो गया है ?
 न जाने जिन्दगी ऐसी क्या होगयी है ?
 न हम खुबतर हस पाते हैं न रो पाते हैं ;
 तनाव रुदेव हमारे जदड़ा को आक्टोपस की भांति
 जकड़े रहता है ।
 चमक पैदा होते-होते ही नेत्रों में विषाद उभर जाता है ।
 शास्त्रों पर लदे हुए पुष्प
 उस समय अखबारनवीसों की खोसली हैं ही बन जाते हैं ।

[५]

नगर की गगनचुम्बी मीनार से रड़ा होकर दस्तानूट
 कचुओ की तरह र गती हुई द्राम
 भिस्सुओ सदृश्य सड़क से विपकी हुई मोटरें
 फाड़कर फँके हुए रद्वी कागजों की भांति हवा में
 उड़ते हुए लोग
 और शास्त्र से भरे हुए पुष्पा-सी बदरग स्त्रियाँ
 उफ । मुझे मितली आ रहा है इस दृश्य पर ।
 और कुछ समय पश्चान् मुझे भी इस दृश्य का
 एक बिंदु बनकर रँगना होगा ॥

मूलभूत अनिवार्यताओं के बोझ से दवा दवा
 वचनाओं, पश्चातापों और विवशताओं के बूदड़ को
 अपनी पीठ पर टोता

समय के साथ बदलत हुए सत्य को पकड़न में
 अनुतरा प्रयत्नशील मेरा सघर्षरत मध्यमवर्गीय मुक्तिबोध
 क्या पतनर अभिशापित ठूँठ बी बना रहेगा ?

[६]

जागन में आरामकुर्सी पर आखें मुँद
 इस गनिमान जगत से जब निलिप्त होना चाहता हू
 तभी पलकों पर महसूस करता हू
 कोई मृदु स्पर्श ।
 मस्तिष्क में दर्दो हुई जाग पिघलती है
 सम्मुख रखी हुई कुर्सी क्या सदैव ही खाली पड़ी रहेगी ?
 मेरा लूसुतान और अतृप्त हृदय क्या
 अपूर्णता में ही दम तोड़ देगा ?

आखें खोलने पर
 आकाश और भी अधिक नीला लगन लगता है ।

[७]

जत्र भी विवेक मेरा साथ देता है ।
 विद्युत् के भटके के अनुरूप मुझमें वहाँ
 एक विचार कीधता है
 अभी तो कष्टों की घुसजात है
 जानदोषता के हाथों की जकड़ हर घड़ी बढ़ती ही जाती ।

अनिश्चय और अराज्यता के सम्मुख
 गिरो हत दिक्षत आधा चट्टान की तरह तनवर
 सड़ी हो जाती है ।

धूप को स्नंहमयी जंगुनियां मुझे घूती हैं
—भैं पसुड़ी-पसुड़ी हो जाता हूँ ।
वायु के सनसनाते हुए भोंके
मुझे सुदूर आतर्प्रतिर तक भकभोर देते हैं ।
मेरे रोम-रोम से प्राक्फुटित होकर एक स गीत
दिशाओं में घुलने लगता है ।

दुखती हुई रंगें

उबट्टर । काट दो मरी दुखती हुई रा ।
 मैं उहे पीछे जतृत धोड आया हू ।
 वे स्व रगे
 जिनमें अभी कोई अग्नि प्रग्वन्नि हुई थी
 और अमय ही बुझ गई ।
 आज खुब्रहट भरा दम-जाट धुवा
 अंधे रूपों सा मु मनाता हुआ
 उनमें भटक रहा हूँ ।

उबट्टर । काट दो वे तमम रगे
 वे जोड़-तोड़ वे प्रियता—
 जो मेरी गति की वेदना में जगड़ती हैं ।
 जीम से जामदय तब की तमाम रगे
 जो आज तक जतृत हैं ।
 मेरी जीम में सुखी हूँ
 मेरी अतड़िमा में खँठन ह
 मन में खट्टना ह
 और मधे पर मन हूँ ।
 अब भी कई बार रूसी अंगड़ियों १
 कोई भूसा सुता दर्द से कराह उठता ह
 और अन्यास ही मरी जीम
 निकलिसी हो जाती हूँ ।

और वे तमाम रगे भी उखटर
 जो आमाशय से हृदय तक धुवे में अंट गई है ।
 मेरे नत्रा की चमक नष्ट हो गई है
 शिराओं का तनाव टोना पड़ गया है
 हथेलियाँ कुम्नाये हुए वनन पुष्पा की तरह
 सटक गयी हैं ।

फिरभी समय अप्रमथ
 वहाँ बैठा परीलोक या क्षीरकाय राजकुमर
 उठ बैठता है और उमादित गजराज सा
 दिशाया पर मट्टी नितिजा की सोमाया की
 धज्जियाँ उडा देता है ।
 तब मुझे लगता है कि मैं अत्र भी जीवित हू ।
 उफ । उस समय मैं कितना कुरूप लगता हू ।

काट दो । उखटर काट दो ॥

मरी वे तमाम रगे
 जि है हृदय स मस्तिष्क तक
 प्रवण्ड अग्नि न उमठ दिया है ।
 अत्र वे अत्रग रगे विकृत हो
 अनकानेक ग्रथिग्रो का रूप धारण कर चुकी है
 मर पावा में जडना है
 मेरी भुजाओं को लकवा मार गया है
 फिर भी मरा कठमुग्धा आरमाभिमान
 घायल सिंह का दहाड़ कर उठ बैठता है ।
 उचे उचे सिंहासन दीमक के लोपड़ों के रुदर
 जमीन पर आ गिरते हैं और मेरा गौरव
 उहे रोदता हुआ अगे बढ़ जाता है ।

डाक्टर । काट दो मेरी वे तमाम रगे
 प्रयथा मैं एक प्रनयकारी तूफान बन जाऊगा
 एक भूकम्प बनकर सर्वनाश कर दूंगा
 और पवालामुखी बनकर फट पड़ूंगा
 या गाज की तरह
 इस सभ्यता पर गिर पड़ूंगा ।
 उरो नहीं डाक्टर ।
 तुम्हारे हाथ काँप रहे हैं । तुम्हारा पीना चेहरा
 तुम्हारी चेतना के लुप्त होन का साती है ।
 पर तुम्ही कहो आज
 कितना मुश्किल हो गया है
 आत्मा को बचा पाना ।

इतना ही जीवन

घग्गे नीचे
रुफद भवज कूतरो वा जोड़ा
करता है घुट्टर-धूँ ।
टव के पानी में
फरफरा कर घू हो जाती है गौरग्या
नीलरूण्ठ बैठा रहता है
मु डेर पर
आगन बीच
बिछी रहती है हरी दूब ।
वगिशाओ में मटक्ते हैं
अनगिनत पुष्प
भीने वादन की वाहो में
देकाबू हो उठता है पूरा चन्द्र
टेकड़ी पर बैठा में देखा करता हू
भरने की कलकल में घुनती विरणो को ।
चम्पई गदन पर लहराते सुनहरे वात
याद हो आते हैं अनायास ।
भर आता है मन ।
कितना अच्छा होता
यदि होता वस इतना ही जीवन ।

विद्यहनाम

इस धरती से पैर हटाओ
यह धरती मेरी है
मेरी मां रोपेगी यहां—
तुलसी का विरवा,
मेरी बहन यहां—
रांगोली मांडेगी,
मेरे दापू खाट दिघा कर बैठेंगे
और कुछ देर सगवारियों से गोठियावगे ।
मैं तुमको यहां वारूद नहीं दिघाने दूंगा
यह धरती मेरी है ।
मैं इस पर गुनाव की कुनम सगाऊंगा
जो कत रक्तिम हो फून उठेगी
और सुगंध—
कैत जायेगी धूपसी—भांगन में ।

श्यामसुन्दर घोष

सुबह का क्रम

एक शिवटल धूप

यह मराजन सुबह का क्रम दे गया ।

और ददले मे सभी कुछ ले गया ।

इस तरह आठ आ में लुवा कर कोई

अगर कर दे अकिचन, धय मानू गा ।

फिर हथेली पर धरो अंगार

मैं रघु गा सेतु सांसो का
दस्तक दो तुम खुने सम्भावना का द्वार ।
तो घुडाता हू उगलिया पर लगे
दा। कटुता के ।
पोछता हू तूलिका के विकर्षक ये रग ।
अस्वीकृत प्रारूप करता हू
जिसे अतिम सत्य माना था ।
निषेधो का क्षण वरे सम्पूर्ण जीवन
कब किसे होता सहज स्वीकार ?
जहर से भिद कर
नीलवर्णी हो उठी है प्राण-मम-काया ।
विदशता मे ही हुई उपलब्धि
अब सहज वैशिष्ट्य देती है ।
और अब तो मैं
रिक्त होकर भी निनादित हू ।
फिर प्रताडित करो द्विगुणित वेग से
फिर हथेली पर धरो अंगार ।

शाम एक इम्प्रेसन

शाम एक उदास सड़की की तरह
गुनगुनाती चल रही फुटपाथ पर ।
जौर मैं बच्चे सरीखा
भिनभिनाती मोदनी वो देखता
पीछे लगा हू ।

सन्नाटा

सन्नाटा होटल का बेघरा है
कुठा का टोस्ट और उदासी का आमलेट
साफ चक्मक प्लेट में सजाकर लाता है
सम्मुख रख जाता है ।
बना से हम काटें, र चम्मच से
धीरे-धीरे घुतरें
गले के नीचे उतारने का साहस नहीं करें ।
वह बिन लेकर जायेगा
टिप वसूला, हल्के मुस्कायेगा ।

कुछ भी हो

कहीं कुछ भी हो

कोई कुछ भी कहे

वियतनाम में हजारों लोग मरते हैं, मरें

कोई हाइड्रोजन बम का प्रयोग करता है करे

कोई कैसिन करदे हमारे देश के साथ हुआ करार

किसी दान पर लानत भेज दे हमें समूचा ससार

सहायता, सद्भाव और सहयोग के नाम पर

हम कर्ज लेते हितकॉगे नहीं

भीख मागने शर्मयेंगे नही ।

अब तो हमारी महिमाओं के गर्भस्थ दिगु

मुह बाये हाथ फेनाये रहेंगे

जाखें निहारती रहेंगी समुद्र

कि खव लते हैं नाज के वीरों से भरे पहाज

कि खव दो जाती है दुग्धतूर्ण के निय

प्रतीभनतूर्ण लवज ।

फिर जसकय घमकीती थिराँ के सियफों में
इसे मुनायेंगे
हथेलियाँ भर-भर तुटायेंगे ।

यह आखिरी सिद्धा
णनजाने ही
हमें वसीयत में
दे दिया गया है
हम हारेंगे नहीं
फूल हवा, धूलरव, पराग
न जाने क्या-क्या उगावेंगे ।

प्रतीक्षा है

सिंधु-तट पर खड़ा हूँ
प्रतीक्षा है किसी ऐसे पोत को जो कालवही हो
मनुज के अज्ञावधि आक्रोश को संजोये
दर्प के दृढ़ चरण धरता
सिंधु के विभुत्य चक्रावर्त को
मार कर गति के थपेड़े
धूम्रियों के अतन कारागार में
दफन करता चने ।

जमकता मस्तूल जिसका
प्रसरतर मध्याह्न के शत-शल समन्वित सूर्य की
आभा मभिन करदे
पान जिसके हवार्जों की विषयगामी भुजाओं को
तोड़ दे
जाधियों को मुद्रियों में पवा जाने
हस्तियों के सहस्रा विंग्छाड़
जिसकी पग-दवियों में छुद कर यों सगे
पैसे वहीं पर कुछ गुँपता हो ।

एक किरण

एक किरण मुझे मे मेरी
औ' में सूर्य बन गया हू

अब तो अधिधारा लुफता छिपता है वद कपाटो में
लगडी कु ठा फिरती बन बन सूने घाटो-वाटो मे
उदयाचल पर टके रहे ये कुहरो के भारो पदे
एक किरण मुझे मे मेरी औ' में सूर्य बन गया हू ।

अब निर्भय चौकड़ियां भरते विश्वासो के मृगछौने
आखेटक संशय-विजडित क्षण लगते आज बहुत दोने
दुरमिसधियां, तोड़ रही दम एक शब्द भूला-भटका
मेरी मुझे मे आया है औ' में सूर्य बन गया हू ।

पाञ्चकथन दू

पाञ्चकथन दू में किसी अननिकी गाथा का
क्या सुईं परिशिष्ट बन कर वनी ?

अभी ही धिटका ज्वलित भूगर्भ से
जानोक का अधिकांश वातावरण म सयस्त ।
इसतिये हा लग रहा येसा
एक धरा म ज्वलित उल्का पिंड मा सर तीत्र,
एक धरा उस सूर्य सा जो हा कुहा-विचस्त ।
किन्तु इतनी वात ता तय है
छान विच्युत पत्र सी हत भागिनो
नियति मेरी नही ।
एदय के क्षा में अजय है य- विचर्यय
चतुर्दिक ही धुध पारावार ।
हर मसीरा चारता है
हर जिररा मुड़नी रहे निदिवत परिधि मे
पराजय कर ले सहर स्वीकार ।
हर मुया स्वर सुड़े नी परिशिष्ट बनकर
कनात गाथा में
हजा है यह कहीं ?

सलामी दो

अधेरी गली में पैदा हुई इन सूर्य किररों को
सलामी दो ।

अधेरे के कठिन आवर्त में
धन से धिरे भटके
समय की वर्जनाओं से निहत्थे जूमने वाले,
कठिन सशय-जनित परिवेश से जकड़ी
भगड़ती सी
जटिल सच्चाइयो की धड़कनो को बूमने वाले ।
अधेरी घाटियों में सिर पटकते हुए भरनो को
सलामी दो ।

अधूरी बिम्ब-छवियों में नही सदर्भ अँट पाता
विरल अभिव्यक्तियां कुछ दूर चल दम तोड़ देती हैं
अधूरे अधपके सपने न कोई रग भर पाते
विवश सचेतना सघष से मुझ मोड़ सेती है
कठिन मरुभूमि में राहे बनाते हुए चरणो को
सलामी दो ।

अधेरी गली में पैदा हुई इन सूर्य-किरणो को
सलामी दो ।

नये शिशु का जन्म

यह सुखद क्षण है ।

द्वार को घेरे दिशायें सड़ी हैं

समुत्सुक हो उया सध्या रात्रि, नम की ठारिकाण
गवशों से भाकती हैं ।

भरा जागन

स्निग्धमाहट, कनरवों से गुजता है ।

रंगी पृथ्वी महावर-रञ्जित पगो से ।

सुरभि सोंकों को, अलक की, पुष्प-मुस की

धुनी है वतावरण में ।

ककिरी ध्वनि मधुर मोठी दज रही है

हवा गुम-शय की प्रतीक्षा में

हर्ष विह्वल है—

विरत पतनी उगनिया से

वाच-चंद्रो पर

बाप देती है ।

इन्द्रधनु के रंग सतों मचलते हैं

नृत्य करने को सवर कर सड़ी हैं नक्षत्र-क-दाय

दशोच की कती पती घास फुनगी

जा छुटो है

मन-दुर्जे पर चट्टो-नी उमक करके भाकती है

भरा है जागन ।

द्वार पर बैठे हुए दिव्यपान, नभ, भास्कर मरुत,
जानोक-धवा योटि थोटि देवता
विष्णु, शिव, ब्रह्मा, गणेशादि महत्ज
मौन कुघ गम्भीर से ह
किंतु सबके हृदय मे है एक उत्सुनता ।

धरा करवट लेनी है
प्रसव-पीडा का निविड़ श्वा
योजनो तक अति सुसुद कम्पन जगाता है ।
पीत मुस्र को दर्द की आभा
नया सौन्दर्य देती है ।

आज मैं बीरे रसाता-सा मुदित हू
हर्ष का उद्वेग मन मे अट नहीं पाता
अभी मेरा द्वार-प्रांगन
गीत-वाद्यो से गु जेगा
इनोक आशीर्वाद के उच्चरित होगे
वेद मात्रो यज्ञ ध्वनि से गमन व्यापेगा
महावर-रजित पगो से दली जाकर
भूमि निज को धय मानेगी ।
उषा, सन्धा तारिका सौदामिनी मिन कर करगी नृत्य—
आस्था की कनिष्ठा कया
नये शिशु को जम देती ह ।

धली आ रही आधी

हू-हू करती चनी जा रही आधी
 ये खेमे समेट तो
 स्त्रुका मे टांगो भटपट
 कावों के रगीन खिलीने
 हल्की-फुल्की राग-दिरगी चीजे
 कागज के फूला जी मालाए, रगीन किस्तीया
 कच्चे रगा की तस्वीरें
 साहा की विड़िया गूग, देवना-देविया

बहुत दिनों तक तुमने लोग का मन मोटा
 हल्के-फुल्के कौशन का दाजार रचाया
 अपने तिर की कलगी में
 कितनी ही विड़ियों के पर खासे
 खेमे गड़े ध्वजा उड़ाई रथ दौड़ाया
 लेकिन कोई है जो नडा निठुर जानाचक्र
 देखा करता है दुनिया क गोरखधधे
 जसन नसन का गराक
 नियामक घटनाआ के विपुन वेग का
 जो जीवन के लिए चपन करता है उपयोगी तटवों का—
 स्वस्थ सिडनिया तनी मुशाय
 घोड़ी पेशानी, हट कये
 स्त्रैद-बुद कर्दम पकिन पव

रेथ के भात्र को दापित करेगा
उग्रतर सक प वेष्टित करेगे य-तन
इससिय आदवरत ह, विवलित नही ह ।

दो पीढियों की व्यथा

व्यथा भेनी थी

पूर्वजों ने ।

नहीं हमने ।

तप्त रेती में चले वे

जाधियों में पने

दियावाना में भटकते रहे

रात काटी बूठ पैडा तमै

साधत वे गये

जन का उत्स पाने

योजनों का जवो-रा विस्तार

जगम जवलो के जघुते शृङ्ग

दनदना में जभय धमते गये

रोदते ही रहे

हर दिश हर कोर

क्योंकि मां की कुश्रि में थे हम ।

दू टूटे वे वे सजन भू-भाग

जदा ही कल-कल, भरने, सहतहाती घास

बादनी तुम रगत ही, एका का जानोक

इन्द्रधनु का विम्व, बर्मा-मैह, सुन्दर प्रकाश

बनींनि देही भूमि में ही

भविष्य को जान देना था ।

हम बड़े दुःख हुए
 चसनै सगे घुटने टेक कर जब
 मातृ मुख से सुनी हमने
 पूर्वजो के कष्ट की यह कथा ।

पिता तो जब भी लिए तूगीर-धवा
 रोदते थे जगनो की भूमि
 मापते थे पवतो की तनहटी दिनरात
 धके हारे शाम वो जब लौटते थे
 हमें अपने वश पर लेकर
 मुस्कराते थे ।
 और हम मृग शावको की भांति
 रोदते थे घने बानो से टके उस वक्त को ।
 मुदित होते थे ।
 यही क्रम रोज का था ।

और जब दुःख बड़े हम स्व हुए
 हमें भेजा गया शिक्षा हेतु
 अपरिचित अनजान लोगो बीच
 जगत जो विल्कुल अवीहा था ।
 हम निरंतर सकुचित से रहे
 अपने को हमेशा अकेले असहाय लगते रहे
 अपरिचितो से हम न गांठें जोड पाये ।
 छूबकर आकठ अपनी हीनता मे
 कहा हमने—
 व्यथा भेली है पूर्वजो ने नही
 हम ही भेलते हैं ।

कुमारेन्द्र पारसनायसिंह

ब्रह्मिण्युक्त सत्य

ज्वरस्मान् आग लगती है। विजनी गिरती है। ज्वरस्मात् वाट्ट
 णाती है धरती डोलती है। पवान्मुखी ज्वरस्मात् फूट पड़ता
 है। ज्वरस्मात् —विज्जुन ज्वरस्मात् नदी दौड़ निकलती है—
 समुद्र के अन्दर हरकत पैदा करती है। सीप में मोती टसते
 हैं। कमल भीनों और सरोवरा में खिलते हैं। सूरज चमकता
 है। और चाँद दुर्वा और रेत पर एक सा रुही करता है।
 रात होने पर कोई खुश होता है तो कोई मर जाता है। सुबह
 जागरण का संदेश मिलने पर भी किसी की नींद नहीं टूटती
 और कोई रात-रात भर जगा रहता है। यह सब ज्वरस्मात् ही
 होता रहता है। और जो ज्वरस्मात् नहीं होता वह बुद्ध और
 होता है। जैसे धरती सीमित और आम्मान अमोमित होता
 है। फिर भी सब रत्न-गर्भा कहनाती है। और दुस्सा झाली
 रह जाता है।

ज्वरस्मात् यह भी नहीं होता कि कोई किसी का खून करता
 है और कोई मारा जाता है। आग लगने के पहले ही आग
 सुना दी जाती है। (जबकि यह दूसरी बात है कि वह
 साथी नहीं रहती।) —ताजमहल ज्वरस्मात् घटने वाली कोई
 घटना नहीं उसे तवारिक के ऊपर घटाया गया है।

सब यह विज्जुन ज्वरस्मान् नहीं कि सगमर्वर और हीरे-
 जवाहरान से भूमी हार्डियों में चमक जगादा होती है। और
 लोग जिसे प्रेम और धन और जाने क्या-क्या करते हैं
 समझते हैं, मैं उसे सु के से शब्दत करत हूँ।

उनराधिश्रार

ये लोग भी क्या खूब हैं । आदमी का अर्थ धी जानने पर तुने है । जानवर हैं । जिन्दगी को आदिम जहर और दुनिया को जगन किये चलते हैं । बाहर निकलते हैं । चरते विवरते हैं । फिर, कदराओं में वापस हो जाते हैं । 'जोड़े' हुए तो रति करते हैं । या फिर रति के लिए ही उद्विग्न हुए रहते हैं । खाते नहीं । न ही पीते हैं । सिर्फ सोस जाते या पजा सस्त करते । और मारते मर जाते हैं ।

बचे तो सड़े भद्दे जाते हैं । और कोई ध्यापार नहीं । नयी-नयी सृष्टि का विधान स्वयं विधि को मिटा कर ही करते हैं । शान्ति-सुव्यवस्था । अहिंसा और प्रेम । शत सहअस्तित्व की आरोपित सहयोग सहानुभूति, सद्भावना—सब मात्र प्रवचना है । दर्शन आत्म मथन नहीं उपरी मुखौटा है । बिना विश्वास, वि वास कर सेते हैं । और कोई बात नहीं उवा उठ जान के लिए ही ऊचाई को घूते हैं

कैसी आस्था है यह । कैसा स्वांग है । सीजर के हत्यारे छत्ती पीट रोते हैं । उपर से । भीतर से दाव-पेंच चलता है । कितन कितने घोडे मर्त्वाकांक्षा क छुट जत । सरपट दौडत । छोटी जागीर की हरियाली कुछ टापों में नीचे रीद जाती है । लोग सडे सड़ मुह आँसों

फाइ देखते, चन देते हैं। (कहाँ गिरा हाथी कहाँ
हिरन मारा गया, कहाँ निर्दाय नीलगाय पर गोनी
घुटी या उजड़ा खोना गौरवा का—उह क्या पड़ा।)
जहाँ पसर जाने की जगह मिल जाती, पसर जाते हैं।

एक दिन उस गाँधी को गोनी मारी गयी। कन केनेहो का
खून हुआ। जान जातिर थक कर यह नदर भी चुप
हुआ। सारा-का-सारा यह जानम जैसे सो गया।
धड़कने सप्राटे के सीन की चलती रही। मगर फिर
वही क्रम। कॉफी हाउस, होटल और रेस्त्रों का वही
जाना शोर। मिनेमा गृहों वाजरो और सड़कों की
चमक-दमक वही। सट्टे और चोर-शाजरो की तू
और सदी दीवने की। वही भुख वी खाद्य। वही
नींद और मंयुन। और मानव उपनद्विवा का दिन
पर दिन मोटा हुआ जाना इतिहास।

काल निरपेक्ष दस्तावेज पर हस्तान्तर एक इदना-सी वृद्ध
था। मोग बिना दम्पत्यत या ७ गुटे के टेप के गवाँ।
असंगठ राज्य राम राजा का।

सोया हुआ जगल

यह सहने की बात कोई अर्थ नहीं रखती। रस्सी सिर्फ़ राख हो जाती है। कि समुद्र के पेट में घाग लगी रहती है—धरती भीतर से बौधते और राख और पानी है—कौन देखता है ?

दृष्टि समुद्र के उठते और गिरते हुए सीने— ऊँचाई-निचाई पर—धरती की रहती है। (कही कोई व्यतिक्रम नहीं होता।) मुझे समय से बाग दे देत हैं।

कुत्ते और स्थार भी नहीं चूकते। गदहों के लिए हर मास वैसाख है। दिल्ली गुस्से में पजे मार मिट्टी उछालती (अपने नख तोड़ लेती) है जबकि चूहों की मजलिस लगी रहती है। कौसी हिम्मत है। देखते-देखत सब कुछ कुछ कुतर डालत हैं। और पता नही चलता।

जब कभी पता भी चलता है तो देर बहुत देर हुई रहती है सोये हुए जगल के स्वप्न-रत राजा की नींद अकस्मात् टूट जाती है। विलकुल अकस्मात् ही पहरा पड़ जाता है। गुस्से में राजा को दुर्ग तक का खयाल नहीं रहता। हुक्म जगल में आग लगा देन का होता

हैं । (चूहों को जैसे भी हो तब खत्म करना रहता है ।)

मगर चूहे भी क्या जगवाज हैं । पूछ से रुई का दुर्ग बांध लेत और खींचते हुए राजा के पास पहुंच जाते हैं । बड़ी विनम्रता से कहत—हुजूर, हम हाजिर हैं । सारे जगन को कर्षों जलाया जाता, जब जलने के लिये हम खुद हो आ पहुंचे हैं ।

राजा सब बात समझ जाते । हुक्म वापस लिया जाता । फिर, ख्वाबों की दस्ती बस जाती । और जगन की—जगन की सारी हरियानों की—रौनक को चूहे कतरते । जामररा अनशन हिरनों और मोरों के गने पड़ जाता है ।

दर्पण

यह कौसी है—किसवी है धुन ? सोना क्या बोलने ?
 क्या बोलते चांदी ? हीरे से क्या पृष्ठ कोयले का गुन ?
 (कब वह काना है कब है लाल—रीरा क्या जाने ?)
 भूख के लिए अनुशासन क्या क्या सदावार ? शोर
 प्रदर हो या कही बाहर हो घर के, क्या मतनव ।

दो दो चार नही होता और चाहे जो हो ।—
 कितना प्रजोब यह प्राणो का विनिमय-व्यापार ।

सुबह कब होती कब होती शाम । बिके हुए सपनों
 के लिए है कौन रात लाती आराम । एक आसों
 उनको हैं । एक आसों इनकी । इतने बडे फास्ते को
 पीता है कौन मैदान । जहां आसू भी हुक्म पर चलते
 है, धर्म-ईमान सभी बंदी हुए रहते हे—राम राज्य
 लायेगा वहां कौन राम । एक राम उनके हैं । एक
 राम इनके । कौन समभाये । उनके भगड़े के बीच
 देखो, जब कौन कटता है राम ।

ढाँवाडोल दुनिया है । गजब ग्रह योग । घर-घर मे
 लगी हुई आग । आसमान माथा मुकाये है—जल नही
 पास । तकवा जो गया समदर को मार —आसों फाड़
 देसता है—वेबस वे-वाक् । प्राणो का मोह है जि हे
 जब दे आसिर जाऊँ वहां भाग । सपटो को कौन
 नाग नापे । कौन धरा भग्नावशेष को रखे सभात ।

एक गगा धोयेगी कितनों के पाप ।

आसिर कोई हिसाब-किताब । (ना) सब
गायब है । चेहरों के रूप और रग तक बंदने हैं ।
(सह-अस्तित्व का नमूना ।) भ्रव दिन ही में उल्टू
भी देखने लग गये हैं । यहाँ मानसरोवर में बगुने
कहाँ मिलेंगे, हसों की पाँत हैं । रूप और रग का
जहेरी मैं कहा था भटका हू—अपने से दूर । अपनी
आँसों में पा नहीं सकता । किसकी आसों में खोजू,
फिर अपना प्रतिरूप ।

अ-तार्किक

हवा जो गदी जगहों से गुजर कर नही आय स्वच्छ ही होती है । दिल जो दिमाग को ताजगी पहुँचाती है । कोई नही देखने की आदत नही लाते तो रोशनी भी आँखों को ज्योति नही छीनती । धरती सबके लिये होती है जो कोई उस के सीने में दरार नही करे या उसकी आँखों पर दीवारों की पट्टी नही डाल दे । समय सबको समान रूप से लेता है । ते ते जो आदमी और आदमी के बीच कभी ईश्वर का आशय नही खड़ा हो—और कोई उसकी व्याख्या अपने मन से न करता हो । सब आप ही आप होता रहे—कोई निमित्त या उपादान कारण नही हो तो फिर कही विकृति या विपर्यय नही हो । रोशनी हर जगह हुई रहे । भीतर या बाहर कहा कोई कुहराम भी नही हो । बुद्ध और शांति का प्रश्न नही उठे । बेलग्रह या काहिरा में जमावा नही हो । पक्वशील पर चलने वाली बहसें समाप्त हो जाय । जगह जगह लोगों की पसन्द के माफिक भरतनाट्यम् या जॉज या बॉल चलता रहे । क्रिसमस और ईस्टर और होली का रंग कभी फीका नही पड़े । रोटी और भात नही मिने भी तो लोगवाग मधनी और मांस और फल और केक और क्रीम लेकर मस्ती से चलते रहे ।

शोषण और दमन और भूख और हल्ला हड़ताल सब लोगों को बेमाने लगने लगे—ये शब्द तक कोशा से निकाल दिए जाएँ ।

साफ सुथरे घरों में रहने वाला—अच्छे कपड़े पहनने वाला आदमी कभी गदा नहीं हो सकता । (गदगी दृष्टि-दोष है) उसे, गदगी कही ही भी तो, इसलिए कि उससे धीमारियाँ फैलती हैं, लोग नाहरू परेशान हो जाते हैं—उसका इलाज सामूहिक या कामराजों के माने पर कराया जाय, अविलम्ब । क्योंकि जैसे भी हो, मरने से आदमी का जीना कही ज्यादा जरूरी है । (क्या मानुष कौन आखिर कौन निकल जाये ।)

और एक बात और है अर्धनियंत्रण के युग में फिज़ूल संचर्च बंद किया जाय । आखिर कफन को भी यथा जरूरत ही आदमी जब भूखे और नगे मर जाय ।

बात दातो का जवाब नही होती—सवान हो सकती है । जैसे आदमी आदमी के लिए आज रुदसे दड़ा स्वान है । कभी कभी ऐसा भी होता है कि सिफ स्वान होता है—जवाब बुद्ध भी नही । और सारा का सारा जीवन-समय सवाल मे ही चलता ह ।

अभी कल का वाक्या—सवान है—(या कोई बहुत मामूली बात—जसा समझ लें)—अपने कमरे के जगते पर बठे बठे—जङ्ग न बिल्कुल नगा है—बाहर गली मे देखता था—कभी कभी ऊपर भी कटे आसमान पर । (वहाँ से घटा आसमान ही नजर आ सकता है ।) दो बच्चे, पता नही कबसे वहाँ बैठे खेन रहे थे । सहसा भगड़े पड़ । उठकर सड़ हो गये । उनके चेहरो पर तलखी आगई । तब तक एक की मां ने बुलाया—फिर दूसरे की । और वे भागते चले गये—जसे भागने को कब से तयार हो ।

फिर बिल्कुल सयोग की ह बात—वहाँ एक मोरय आ गई । उसके पीछे एक और आई । दोनो काफी चहकती थी । कोई विग्रह-विच्छेद कही नजर नही जाता था । मैं उनका फुदकना भटकना देख रहा था (मस्तिष्क एकदम निद्रा था ।) फिर जाने कसे, महानगर का खयाल हो आया । खयालों का ताँता सग गया । चीन के अणु विस्फोट का—

शुद्धवैव के पतन का—नेरू की मौत और कौन्डो की हत्या का और जान कस-कसे, कितने-कितन खयानों ने धावा दान दिया था। उनके जाल से निकलने में समय लग गया। फिर देखा ता मूरयो का पता नही था। और मैं चतना को समेट कर पुन अपने कमरे में कद हो गया था।

सिनेमा जाने की बात थी। अभी वपडे ददएकर बाहर निकलना ही चाहता था, कि राइन का खयान आ गया। बहुत तन्धी व्यू पड जाती है। और दिन-दिन भर सडे रह जान दर भी व्रत दुरा नही होता—एक्कादशी की नौदत आ जाती है।

करन को एम ए पास किया है। और लोग थोड़ा बहुत जानने भी लगे हैं। फिर भी यह हान कि ठेला और रिक्शा चानन वने लोगों के बंधे से कंधे जमाकर—पीछे से सीना रगड़त हुए दिन-दिन भर सडे रहना पड़ता है।

बात दिल्कुन अस्सरती नही, जो वला रासा देश साथ होता। मगर मन बहुत बहुत खोजा—वला कभी किसी सेठ-साहूकार या कारों में चानने वान बाबू या मच-चट्ट दोमने वाने नता के दर्शन नही हुए हैं। (मुमकिन है ये लोग चावन चीनी और जाटा नही साते हों—दचत थी सरकारी उधीन पर अमन कर अडा और संव और द्वाबुट और क्रीम पर रत्र कर जाते हां।)

फिर बात जाने नही दड़ती। बोई रथम

चेतना पर लोक स्रोत देती है और मैं जहाँ का
तहाँ फिर कटे कटे सड़ा रह जाता हूँ ।

सुराज

[प्रधान मन्त्री ने नाम एक खुले चित्रो]

नही, हम ग्याय का नाम अत्र कमी नही लेंगे ।
 (विरोध प्रयाय की भाषा है ।) यहाँ पुत्रम प्रो'
 सितम कहीं होता है । गम की छाया नही है ।
 कोई दुखी-फटेहान नही हं । कही आग नही
 मगती । न किसी की दीवार टाही जाती । हक
 बिना मांगे मिल जाता हं ।

वो जमाना नही रहा—जब आदमी आदमी का
 दु मन था—खून पीता रहता था । रावरा सीता
 को उटाकर ले गया था । दुग्गसुन ने द्रौपदी
 का चीर हरन किया था । लका में आग लग गई
 यो । वीरान सुरक्षेत्र पड़ गया था । आज
 किसी की माँ कही बेषयी नही होती । फरीक
 दुर्घोधन नही होता । कही तु ती नती होती—
 कोई कन नही होता । भीम और द्रोग
 आरमदरया घर चुके हैं । नमक हावी होकर
 विशीश मुन नी भीता ।

धरती हर जग धरती ह । रदकी हं । लोग
 उगवती ह । मध्ये लपर आत्मन का स्या हं ।

गगाजन सबके निय है । सबको काशी में मरने
की छुट है । अरे और दमन और शोषण—सब
दफन हो गये हैं । (हम कितने भाग्यशाली हैं ।)
सबके निय पर्दा है—घर है । सभी राज करते हैं ।
कही भूख कोई जान नही लती हर मुरदे को
कफन भिन जाता है ।

कल फिर

[मम्बा नी हत्या नी खजर पडवर]

आज दिन

किसी बदनसीब बाप के हृदय-सा टूटा हुआ

बिनकुल छुप ह ।

सूरज किसी शरीफ मुजरिम सा

पशुनाप की भाग में जन रहा ह ।

रात में भवानक केकर उठी सियारिम सी

काम काज की आवाजें

एक आतंक खड़ा कर चुकी हैं ।

आमोश बेबसी के जड़ वानों से

मेरे अस्तिरव का प्रश्न

पहरए के ठनकने-या सहसा टकरा गया ह ।

मेरे अहित की आशका स

स्वप्न में रेवा हो गई मेरी बीबी को काठ मार गया ह ।

मेरे बच्चे

बत्ते की गुराहट में कांप एठ दरगोश के बच्चों की तरह

नी द में ही कांप उठे हैं ।

और मेरा मैं

जिब्त हूये बकरे-सा तड़प रहा ह ।

क्या करू ?

पहा गड़ा हूँ उमरे पागे

अब कोई राह नहीं — और न यम से कोई
बापसी है ।

जय त देवा की बेनीस उमर-पी
घट रात

सागर से टूटती गरी है ।

मुझे सुन्दर का तेतरत इतफार है ।

मगर यम सुबह गली होगी ।

मुझे गोली मार दी जायेगी

और मेरा खून

मुझ पर कफन देने के लिए

फिर कोई सुत्रह मोन लायेगा ।

के लिए भी वैसे नहीं रहे । माथे दर्द से झुके हुए हैं । साधारण हान वान पुष्पन के लिए दरबजे पर खड़ा है ।

मैंने कब फिर एक सपना देखा मेरे दरवाजे पर भोड़ लगी है । मुझे हथकड़ियाँ पहना कर बेरहमी से बाहर खींचा जा रहा है । और मेरी माँ पछाड़ खाकर चौखट्टे पर गिरी पड़ी है ।

किन्नारा

और यहाँ एक नदी जाकर समाप्त हो जाती है मगर कोई सगम नहीं होता। पर्वत देखते रहते हैं और कितनी कितनी उपन्यथाये यू ही नगी पड़ी रहती है। उल्कापात होता है और रात की खामोशी में कोई ज्वक नहीं पड़ता।

इच्छ ये वेपनाह हुई रहती हैं। औरन का जिस्म वेभाव दिक्ता रहता है मर्दों की भीड़ में। भव सिर्फ सोना और चाँदी और ब्रीम और विरबुट का होता है।

दिन रोज की तरह जाता है और माघूस तौट जाता है। सवेरे सवेरे रँगती हुई जाकृतियाँ शाम हाते होते छोई गुग्ग खोज लेती हैं। मगर वे गुफायें भी उटे दरस नही दे पाती, कि खुद ही घटान हुई रहती हैं। (उनक लिए सूर्य का प्रथम उलटा तथा होता है।)

जिसे एक किताब दूदा दूदा हो जाता है, जिसे गत और दिन में लड़नी रहता जा कर उन की पुरी में गठन की वी पत्तियाँ में बदल जाता है। मर्दनी लड़ कर जाता है और अंत में दूदा दूदा जा उनके दर्शन छोई जगन न सदा हो। (२०५५)

म मा हरण और मार हात ह ।)

मुझे कभी-कभी उगते सूर्य से डूबता हुआ सूर्य ज्यादा
हमदर्द उगता है । हर वक्त ऐसा गरी होता कि अंधेरे
की सुरत में किसी जगह की सुरत दिखायी पडती
है । न्यायांडा के इतिहास में सिर्फ तारोगे बदलती
है नाटक यम की चरता रहता है । (वे परिधा होते
हैं जिनकी कहानियां अच्छी लगती ह ।)

में डर जाता हू जो कभी अदर की खामोशी एक
अस्पष्ट मगर खौफनाक आवाज में बदल जाती है ।
बद हुई आगे घण्टाघट में खुलनी ह तो फतार-की
कतार रगती हुई चीटियां नजर आती ह । यह
कोई साप हाता है जा घसीटा जाता रहता है और
जिमकी सास वे घाट गधी रहती हैं । (खामोशी
का अर्थ हर वक्त खामोशी नहीं होता ।)

जुगमन्दिर तायल



धूप-स्नान

शकाल

शीत-धूप में जन सोया है

वस्त्र उतार

और जन में आकाश

और पहाड़

एक पक्षी जगान को उसे छुता है

फिर सहम

वापिस नीट जाता है

शदहीन, शीतल हवा

हन्के हाथों के स्पर्श से

सिहरा

आगे बढ़ जाती है

एक बीजा काव काव करता है

और शरमा कर

छुप हो जाता है

दों की दोवार में

बाई एक

देखना है रूप

जिस दृढ़ कर लेता है ।

सूरज सब देखता है

सूरज सब देखता है
नीली खिडकी से ।

हरी मखमल का एक बड़ा गनीचा
जिसमें पीली बुदिया है
एक बड़ा गलीचा पीली मखमल का
जिसमें हरी बुदिया है
हर ओर गनीच ही गनीचे
पीले आर हरे
इधर उधर, आगे और आगे
शीतल चाँदी की गोट लगी है
चारों ओर ।

गलीचों के पार
धूप में चमकता विज्ञान दर्पण ।

दाच दीच में
टीने कपड़े पहिन स्रडे पहरेदार
स्रवरदार
कोई हाथ लगाकर गदा करे नहीं ।

अहा ।
ये गनीच तो जिन्दा भी है

काई ि राकार धोर ं छू देता है
और इनम मि रन टीउ पत्नी है ।

ओभी सुरज
नोच एतर जाना है जिनारा तर ।

शिरिय की गंध

शहर के बीच पूना है शिरिय का पट पहली
है गंधमरी नरिया ।

सपाट चेहरा की भीड़ गुजर जाती है पगाने की
बदलू छोड़ टूट कार वम म जि दगी लडती है
नयुना मे डोजन की गंध भर हाथ टकरात है
जोश भर दर-दार, जटटहाग्य को गज रि तर
जाती है । कोयाहन है धुन—मदृति क न रे
सगोन की धुन बना की नुम हरा उ । ये मच
उडते हैं धविताओ के शब्द । मिक पाडे मू गो है
शिरिय की गंध नयुन धु । दिनदिनात है मस्त
हो । मगातार उड़नी है धुन है मने है पून
कीमन, गंधभरे ।

शहर के बीच पूना है शिरिय का
पेट ।

सेतु

करी बिना होना है एक गुलाब
और उडती होती है एक मधु मक्खी
हवा की एक तरंग में
दोनों को मिलाता हू ।

बद कमरे की किसी खिडकी पर
बैठा होता है उदास
करी एक आदमी । और
विजन में भटकती होती है
एक शिरीष गंध
दोना से निरसग में
दोनों को मिलाता हू ।

आकाश में घुस होता है
किसी वात में कही एक अर्थ
धरती पर भीड़ में
भटकना हो । है करी एक शब्द
अनिर्वर्त का एक रंग में
दोनों को मिलाता हू ।

घटवान जाओगे । तुम्हारे हाथ घुटनो के नीचे
पाद रहे । दा घुना म पैर उा प्राये
है । अखिं गरदन में लटक गई ह और दा
तुम्हारी आंत चवाने है ।

फिर हवा यह क्रि म असुनियत से घटवा
गया और कविता में पसायन कर गया ।

अस्पष्ट, उनभा हुआ और इस पर भी पारदर्श
लहरा म भनकते वार वार भनकते और वार
वार छुपन पुसराज प ने चमकीली मछ चिया
और गल तिय नर-नहर पीछ दौड़ना-टौफना
वेचैन म ।

अस्तित्व

(रचना जे बाद)

एक आकाश मेर चारा ओर फैला ह एक
गध मुझे सब ओर से घेरती है दूर चमकता
ह एक पुराण-सूरज हाथ भर के फैलाव में
हँसता ह एक छोटा फूल एक शब्द मुझे
सबसे जोड़ता ह ।

यह नहीं कि सिर्फ आकाश में हू । आकाश में
हूँ और उसे बनाता भी हूँ गध में हूँ और
उसे मादकता भी मैं ही देता हूँ ।

यह नहीं कि सूरज सिर्फ दूर चमकता हूँ किरने
मुझ तक भी आती हैं मेरे रक्त को उष्ण करती
हैं मेरी आखा को प्रकाश देती हैं । आर फूल
भना उसे मैं कैसे भूल सकता हूँ क्योंकि उसकी
हसी किये ही तो निखता हूँ ।

सो आकाश मैं हूँ गध में हूँ सूरज और
फूल मैं हूँ और इनसे ज्यादा भी मैं हूँ ।

जिन्दगी

मौत कहीं नहीं है ?

बिजली के तारों पर झूमती है मौत
ट्रकों में गुराती दौड़ती है मौत । लोह
की पटरियों पर बिघाड़ती है मात
कहीं नहीं है मौत ?

सड़क बीच मान गढ़े गड्ढे में छुपी
है कमिस्ट की शीशियों में मौत
नाम हँसी हँसती है, चमकती कार में
गद्दा हर बंठ मौत सफर करती है
नहीं है कहीं मौत ?

मौन दिजली के सिववा में इतजार
करता है । मौन पाँचवीं मंजिल की
खिड़की से भाँकती है । मौत नान
फायर विग्रेड की घंटो बजाती है ।
ह कहीं नहीं मौत ?

और जिन्दगी

इस मद्धकी उभा करती इस मद्ध
पर हँसती इस मद्धके बीच भागती
रानी है जिन्दगी ।

लावा

[छात्र गद्य के नमूने]

कितने दिना से गरम ल वा धरती की भीतरी दरारा म
भटक रहा है ।

इन दिना लाव की एक परत बाहर फूट आई है आर
उसे रास्ता देने का सडक माली हागई है बाजारा न
आँख बंद करली ह सोमे ट की दीवारा ने जगह छोड
दी है लोहे के सम्भे काँप उठे ह लावे का ककश
शोर सुनकर सगीत रुक गया है पारदर्शा शीशे दरक
गय है रगीन शब्दो से भरे पोस्टर उतर गये हैं
गलियाँ अजीब ककश नारो से भर गई है ।

वे लोग ऊँची गद्द दार कुर्सियो पर बठते हैं आर काँव
की खिडकिया से सारी दुनिया देखने ह । उ हाने बह दिया
ह कि यह महज कानून और व्यवस्था को समस्या है
लाठी के चन्द मजबूत हाथ आँसू गस क थोडे से गोने
लाटे की नलियो से निरुनी शीशे का चन्द गोनियाँ सब
ठाक कर दगो और उहोन अपनी खिड़किया के मोटे
परदे गिरा निय है ।

इम बीच लाव की आग बढ़ती जा रही ह , वृक्ष और
फूल पना स भरे फवरे सगीत और साहित्य के
प्रसारण के द्रोग म सुग रहे ह ।

उह इन सब का दामन धरता नो ह । फवारे वे फिर से

दना लगे, सगीत और फूलों के दिना काम चला लेंगे
ये किसी को भी जरूरी चीज दिक्कत नहीं है
और नाचे की भाग थोड़ी देर में अपन आप बुझ
जायगी ।

पर कब क्या होगा ? नाचा ता प्रभो प्रार भी है जो
धरती की भीतरी दरारा में मटक रहा है या कि वाहर
प्राने को कसमसा रहा है । धरती की परतें कमजोर
हो गई हैं, अगर वे कब फट गईं तो क्या होगा ?

कंकटस-कथा

[माण्ड्या । के लक्ष्य में]

शहर से बाहर पहाड़ी के एक ट्रान पर एक कंकटस पता नहीं कब उग आई था । हम कभी-कभी महत्वपूर्ण कतलिया से अवकाश मिलने पर उधर घूमने जाते थे । उस कंकटस पर भी कभी-कभी हमारा दृष्टि पड़ो थी— जब हमारी आंखें उधर उधर घूम सी दृष्टि पीती होती थी वह आंखों की राह में अटक जाती थी । हमने उस सदृश उपेक्षणीय समझा था—काटो भरी एक व्यर्थ भाड़ी अनुपयोगी अर्थहीन । वहाँ अनेक सुन्दर वृक्ष थे और जितने ही कोमल फूल थे उनके बीच उसकी हस्ती ही क्या थी जो हम उस महत्व देते । हाँ हमने कभी-कभी उसमें फूल भी देखे थे । वे फूल हमें पसन्द नहीं आये थे ।

वह कंकटस कुछ अजीब थी । बावजूद हमारी सब उपेक्षाओं के वह बढ़ती रही दिनों दिन भारी भार सम्बो होती रही उसके फूल भी बढ़ते रह पता नहीं कौन उसे पानी देता था हमने तो कभी दिया नहीं । हमें ताज्जुब था कि हमारी उपेक्षाओं ने उस सुष्मा क्या नहीं दिया उसमें फूल जान बूझ क्या नहीं हुये । फिर हमने उधर ध्यान देना ही छोड़ दिया हमारे पास अपने बहुत महत्वपूर्ण कार्य थे । और अवकाश के बिना

सुन्दर वृक्ष तथा कामन फूल थे ।

एक दिन जिमी न कहा था कि
वह बैकटम सूखन नगी_है । यह
समाचार म त्वरुग नलो था ।

मेजिन हुआ यह कि एक वड आदमी न (जिमके प्रति हमार
दिना मे बहुत जगन था और जिसका पम-द-नपास-द का लम
बहुत ध्यान रखत थे । उस पगड़ा टनान स उठवा अपन
कमर म लगा लिया और उस पर बहुत हूँ खच मा
क्रिया । लमन उसके महत्व को तुरत पावाना और बार
बार उस देखन गज, लमके राग पर चिंता प्रकट की चार
उस दड़े आदमी को ताराक की कि वह इतना सदाशय हो
रहा था ।

अब वह बैकटम सूख कर मर गई है । वह आदमी भारी
प्रयत्नो के बावजूद उसे दवा नगी सका । हम इस बिना
मे है कि अब हमार लस उसके प्रति कमा होना चाहिये,
उसकी पगदा लगेक को हमार कामन फूल और सुन्दर
वृक्ष के सिधे सुकमानदायक तो नरी होगी ।

युद्ध के बाद का शरद

आकाश इन दिनों बहुत स्वच्छ हो गया है, मुझे
आकाश की ओर दक्षत उर लगता है । धरती पर
इन दिनों बहुत फूल खिल गये हैं मुझे फूलों की
वात करत राकोच होता है । कमल भरे तान
मधुमक्खिया के गुजन से भरे गये ह मेरे काना
मे कुष्ठ और भ्रान्तक आवाज गूँजती है ।

नीचे आकाश मे चीत बहुत-बहुत ऊपर उड़ती
हैं मैं हवाई हमने के सौर्यन की प्रतिभा करने
लगता हू । धूप मे घूमने को इन दिना बहुत मन
हाता है मुझे दूब भर मदाना की जगह खाइया
बाद जाना है । वर्णा-धुनी बाना शिवाय धूप मे
बपकना ह मुझे भीम टैका का भ्रम होन लगता
है । जगनी नाना के पुना नीचे बहने दर्परा से
स्वच्छ पानी में प्रतिबिम्ब देखने को बहुत मन करता
है स्पष्ट पडे खून को धारायें प्रतिबिम्ब तोड देती
हैं ।

रात भर इन दिना हर िगार भरता है वास्तव की
गज भरे रधा से निकन नही पाई है । बाद की
रोशनी बुरी लगती है अंधरे मे रोशनी जनाते
हाथ हिचक जाते हैं । रात में अब तारे नही देखता

है।

युद्ध किम्वद्वान चला गया है पर नहा युद्ध
एक बार आकर कभी वापस नहीं जाता है।

विजय के बाद

विजय का मुकुट मेरे सिर पर चमकता ह
माँ । एक आर युद्ध जीत में आया हू
मुझे अपनी गोदी में घुसानो ।

गुनाह के कुजा में वारूद के गोने सुनगाये
बच्चों की क्रियकारियों को विस्फोट के धमाक से दबाया
हर एक को शक की निगाहो से देखा मैं
सत्य को सिर्फ अपने साथ साथ समझा
घृणा को सबसे बडा आदर्श मान
अस्तित्व की सार्थकता रत्तरजित तनवर में समझी, मैंने
जिजम में परिचित नहीं था
जिजकी शकन नहीं देखी थी कभी
उ है अपना शत्रु समझा प्रहार किया
(राष्ट्रहित धरो कहता था)

गर्भ सूत्र स चिकन बन रास्ता स गुजरता
मानव परिपयो स उठे स तु पार करता
निजन बस्त्रियो क स नाट में जयनाद सुनता
माँ । मैं युद्ध जीत तुम्हारे पास आया हू
मुझे अपनी गोदी में घुसानो
करूर क्यारियो में सुरग विद्यान बाने पहलै हाथ
मेरे नहीं थे

चीड़वन को मेरे टैंक की खाली सदत जजीर न
पहले नहीं रौदा था

बर्फ को सफेद स्फटिक पर्श पर
आदमखोर जानवरों के पजो की छाप
मेरे पजा की छाप नही थी
पर बुद्ध लोग कवन बुद्ध की भाषा सम्भन हैं
(यह कमी विवशना है—मैं क्या करूँ माँ)

और बुद्ध धान पर
किनी शब्द का कोई अर्थ नहीं रहता
गन्धी घाटिया में गूँजती
स्त्रिफ एक दर्दनाक चीत्कार रह जाती है
(यह कैसी विडम्बना है)

माँ ! एक और बुद्ध हार
(बुद्ध म दोनों ही पक्ष हारते हैं)
म तुम्हारे पास आया हूँ
मुझ अपनी गोदो में घुसाला ।



अजित पुष्कल

देश

सिर पर जोड़े बर्ज
परी में समुद्र
पहाड़ भी कठोर नग्न छाती
बाँहें पसार
जैसा ईसा टगा हो सन्धिव पर ।
इसके जेहन म रगा गोग
काला लम्बादा पत्तन
मरी शीढ़ पर
यागार्ण करत हँ
फिर भी —
म सारे देश को
मुटठी म नरी
हृदय मे रखता हू ।

अक्षर आवशेष और प्रायाम

हम नवानुदित मानवता अनुष्ठान के
अक्षर है भाव भरे
मून से हटकर बोलते हैं
क्याकि हम नये मूल्य
नये मान अक्षर है
समय की मसि क
इष्टिमत चित्र है ।

हमारे नियता मर चुक
सब साती है
व मानसिक चलो क ज मदाता
अपराधी थे
आज का युग उह ठिगन दिखाता है ।

अब हम धनप्रवाहट सुनते हैं
दिगाओ की
पृथ्वी क पृथो पर
उभरन लग हैं
क्याकि हम अक्षर हैं
सत्य क धरतान का इट है
मत्य जो साथ स गड़ने ह ।

अभिषक्ति शब्दा मे
शब्द लय मे
लय मुभ मे

छत के तले छिपकनियाँ पनें
 भापस म लड
 वरामदे म पू। चरमराध
 व नफो वरडा पोत टूट
 नी पर द, नी पुरिया टन ।
 समर जितना वषा इस्तान ह आज
 जा अनजन अर म
 दोमरा का घेर
 नुम वो दोवारा पर सडा है ।
 नी वरतो धाटा
 जासमान नगा है
 पागना का मिर फुटीवन
 वनाम दगा ह ।
 यहा अनो हो पाडा पनपती है
 किमी वा अगुनिया जरमी ह
 किसी वा सिर अजटा है
 फिर भा मानुम नही
 कहा किसकी दवा है ।
 वस वचना की राहत है
 वस सब जाटत ह ।
 गिद्ध सु घ र० ह
 अस्तान का दप्पर
 उनको दानिक आसे
 मृत्यु व इतजार में
 लानीपो वा सुख बाट रही ह
 पज सटना र० ह
 चावो में स्वाद पनप रहा है

ईश्वर

ईश्वर के नाम पर
संस्तुत है दिव्य और कान
सारा का सारा वस्तुमान ।
उस अखंड तत्त्व का
एक एक टुकड़ा जवडो में दावे
चौराहो पर लडते हूँ लोग
कुत्तो की तरह उत्तेजित
भूखते हैं धर्म युद्ध का आह्वान ।
ईश्वर अगर युद्ध है
तो मैं नहीं मानता
नहीं मानता इस
त्रिस्मरण मात्र से
आंतरिक प्रकाश पुञ्ज
बन जाय खून का ताताय
भोग मुरदा की गंध से
फटन नग ब्रह्मांड
स्वार्थ और कृता के लिए
ईश्वर अगर युद्ध है
तो मैं नहीं मानता
नहीं मानता
इस शब्द साधना को नहीं मानता ।
सुभ उन आत्मनिष्ठा से घृणा है

जिहोंने दिना सोचे
ईश्वर के अस्तित्व को
सुद अजम सता और
व्यक्तिगत स्वाध के निय
विनापित किया
एरुके स्वरूप का शव
अधरे में
आकाश से पृथ्वी तक
टाग दिया ।
मोगा न थोड़ा थोड ।
उस बाट दिया
जमा चाहा
वमा प्रयोग किया ।

एक शाम

तट पर सपाटा
राय में खानी वशी
डूबते सूर्य को रोशनी
गटक कर मंत्रनिर्घा

समा ग३ धार में
अजीब है आग
सामने सब घटने दिया

जा प्रतुनिया रही
 जानत भग जनात चाहती ह ।
 इसने हृदय को वृत्त कर
 धरती रची है ।
 सूय या अवतार
 देने के लिए
 रचा रची ह ।

(२)

आग ह वह
 रात का पिछना प र ह
 मैं अग्नेना
 जस निरा नव दीप्त तारा
 सुप्त होने स बवा सा
 नील नभ के एक कोने
 ठठ गया हू ?
 काज प्रदनी
 नील आभा पी गया हू ।
 पड़ सारे मीन
 बिड़िया त्रिपी बटी
 सूनी सडको का नगर
 मेरी दृष्टि का अट्टहास
 इन पर नही सुभता
 न इनका रग
 मेरे नयन चढ़ता ।
 एक कोने—

जा प्रगुनियां गनी
 जाना मम जनाता चाहती ह ।
 इसने हृदय को तृप्त कर
 धरती रची है ।
 रूय को अवतार
 देने के लिए
 रक्षा रची है ।

(२)

आग ह वह
 रात का पिछना पर ह
 मं अदेना
 जस निरा नव दीप्त तारा
 लुप्त होने स ववा सा
 नील नभ के एक कोने
 ठठ गया हू ?
 का प्र प्रपनी
 नील भामा पी गया हू ।
 पेड़ सारे मौन
 विड़ियां त्रिपी बठी
 सूनी सडको का नगर
 मेरी दृष्टि का अट्टहास
 इन पर नही सुमता
 न इनका रग
 मेरे नयन चंद्रता ।
 एक कोने—

थोठो से उार घर
 जा रहे वध लोग
 आधी गना म भागते चुपचाप
 कानी गिना पर
 रोशनी की तूव कचरी जा रही है ।
 भोगरा का खुन गया विद्राह
 यही मरा मन
 काले श्याम पट पर
 युग बोध का
 दुर्बाध पोस्टर निख रहा ह ।
 और कब तक
 कोठे खुले खुलते रहेगे
 और कब तक
 विलिनयों सोने न दे गो
 और कब तक
 पानू कुत्ता
 तित ले पर रहेगा
 और कब तक
 खोत म अपनी
 मुन जगना पड़ेगा ।
 और कब तक
 कानी गिना पर
 रागनी मूर्द्धिन रंगी
 यही गत इतिहास के वे तथ्य
 मान पता वे तने
 छिपे पडे ~
 श्री भग्न निर आरिहो

जना डाली है अंगुनियों
अप्र मौन भरमक तोड दुगा
घन घनाकर ।

स्वागत पट पकट गया ।
 पडान के नीचे
 चीखता है सानाटा
 साजा का दर्द
 समा गया खोसने शहर मे ।
 शहर के दो छोर
 पीडा से काप रहे है
 पालतू जानवर नदी पार कर
 वस्तिवाँ टूँट रहे है
 काले हरे तान
 बिचकौने म डा मे
 सून के छी टे उभर रहे है
 कुहासे की भाव
 पडान तक बढ़ने को उठ रही है
 मैदाना मे हुत के मन मे
 भूँकन की हलक उठ रही है ।
 लगता हे
 एक शौर नये उत्सव के लिए
 अपने को
 दो दिन तक भीर धरूँ ।

सोफे पर सोता है ।

सुनह शाम वे भिनभिनाते हैं

उसवे वामार घोडे वे जवडे के पास

जिसके सामने टर सा जान होता ह

जो बहुत क पास नही होता ।

उसी शहर की शिराघ्रा मे

विशाल इस्पाती वभव को रू घत हुए

दाडना पडता है चुत्त सा

कभी जग्गले कभी हजारों क साथ

कभी नी द कभी जग कर कटती है रात

मरने क निर इतना हो बहुत ह

इसीनिय लगता है—

फितना घृणित ह किसी को सूर्य कहना

फिर उसी की आच मे दहना

मुर्दे बन रहना ।

यद्यपि जानता हू

बडा हो कठिन ह

मुर्दों को जगाना

धरती राख स ऊपर उठा

गुद्ध हवा म सुसाना

कवाना को शो वश में सजाना

धीराहा पर टागना

पोस्टरा म आरुना ।

क्याकि मत्रसिद्ध कर्मकाडियो

और रक्त शोषक जाका की साजिश न

उह मर उतर

पत दर पत स टका ह

एक भव्य नगर रचा ह
जहां उनक आत्मज दिनविनात हैं
मन्त्रसिद्धि के असफल प्रयास मे
कु डनिनी दुवन, साम रोक

रून उगलत है
अपने को घुँटत ह
मुँदें नरा मसो धनत है
चूला सो तान उत्पन्न धर
बाँझो के मुनान मे बिठा देत है
सपनघाता जीव मे
अलग अलग सूसन देते हैं ।
बितना आत्मदाह
जितनी धस मस मे
उपनता है अनका या जीवन
एयर क ओशएउ सजाने के इर्द-गिर्द
गिरवा धरा जीवन

हम जीते हैं मृत्यु भय लिये ।
 अराजकता टम जाती है रवध एक अवस्था म
 अचेत हम रहे तो
 धारण कर किन्न रूप
 सचत हा तो शातिपूर्ण रूपांतर ।

रूपांतर दपण में हर दार
 नये सिरे से अपने से प चान
 अपने से बातचीत बन गयी लोगो से बात
 और लोगो म भाषण
 बना अपन से सम्भाषण
 भीड म अकला मत अकले में अ दर
 असरूप चहरा की भीड एक नीड सा मिना
 किसी स्वर की मरुमोरती भी ड मे
 और मौन गगता ह प्राण तक
 क्षण भण जीना और क्षण भण मरना
 कभी बन जाता ह सदिया के आर पार
 शाश्वत अनहोना कितना सहज है
 रूपांतर सदिया का क्षण में और क्षणो का
 वर्षों और सदिया में
 एक त्रि दगो का कई त्रि दगिणो म
 और कई त्रि दगिणो का एक त्रि दगो में ।
 कान एक सुविधा का माप है
 हमारी गति का कान काई नता टम १ ।

हम है जो अस्तित्व का ताप रू दह कर
 बन जात है अरुण भाग
 नेते है आभा अरस जान ह ठरडे मन

मैं तुम्हें क्या दू

मैं तुम्हें क्या दू ये साथी
अपना क्या है
इस सवहारा के पास
तीन शब्द चुरा लाया हू
बैकों के सेफ वान्ट से
'नडो' और लडो
एक एक शब्द बड़ा कीमती है
इनकी आवाज बढ़ करने के लिए
जड दिये जाते हैं
लाखा रुपये के ताले—काले काले
इनसे दो बात
बड़ी दुलभ है ये साथी

मैं तुम्हें क्या दू ये साथी
मेरी सांस
जो तुम्हें छू रही कपोली पर
मैं चुरा लाया हू
उन बुर्दाफरोशी की तरातू से
जिनके हाथ
बेब रखी है मैंने यह जिदगी
एक एक सांस बड़ी कीमती है
जब अपनी सांसो से

मुनाकात

बड़ी दुर्लभ है ये साथी

मैं तुम्हें क्या दूँ ये साथी

मेरा हाथ

जो तुम्हारे हाथ तक पहुँच गया है

मैं घुरा नाया दूँ

उन श्वातों से जलना बंधक रखे हैं

तुम्हारे स्पर्श से

जहसाम हुआ ये मेरे जपने हैं

मेरे ही सपने हैं

एक एक स्पर्श बड़ा कीमती है

सहारा देना थोड़ा सहारा देना

इन हाथों की सौगात

बड़ी दुर्लभ है ये साथी

एक पुराने महल में

मैं बैठा हुआ हूँ

इस पुराने महल में

जिसके दर्य पर घाये हुए हैं

मकड़ियों के जाने

मरा गव भरता है

जजरित प्लास्टर के

क्षरने की आहत से

(शायद ऊपर से कोई जेट

निकल गया है

अट्टहास करता)

मुझे लगता है जैसे मैं

क्षुद्र तिलचट्टे सा रेंग गया हूँ

दुबक कर

और तिलचट्टा के दुबक वठ जाने से

क्षरना नहीं सकता है

जजरित प्लास्टर का ।

मैं वठा हुआ हूँ

इस पुराने महल में

जिसमें हर दिन एक ईंट का गलज

सिंसक जाता है निसकता

अतीत का गव गुम्बद

मौत बन कर टूट पड़ना चाहता है

मर सिर पर

बनमान दरारा से भाजती हुई

उच्छ्वसना दूरे के तान दशारां पर

कॉप-कॉप उठता है

सारा गस्तिव

(शायद कही जायनामादूट से

उड़ा दी गई है

धाराय शक नेधानी बट्टान)

मुझे मगता है जस मरी धडकनें

दूरे में समाथी हुई

एक सूरज को ताकता है आशा से

और सूरज को ताकन से

सिसकना नो रकता है

गनती हुई ईटा का

में धठा हुआ है

इस पुराने मन में

शक सारि फुफ्फुसता है शक पर

मरि धारे

मरी विरामन है विरामि विरामत मे

और जान सौस्त में

द जा जानन ये

एटर उतारन का मत्र

ए ह सूर्य मया है सारि

और में लदेवा है

इसोनी लाल के उरून के ग हुआ

में एट्टटान है

कोई है कोई है
 मेरे गले से क्यो नही निकलती है
 कोई मो जावाज
 मं डरता हू नारो से
 (शायद कही सड़कों से
 निकल गया है
 नारो का जलूस)
 और नाग की आंखो का जादू
 टूटता ही नही है
 कोरे छटपटाने स

मैं बठा हुआ हूँ
 इस पुराने महल में
 क्षरना नही रुकता है जजरित प्लास्टर का
 सिसकना नही रुकता है गनती हुई ईंटो का
 टूटता नही है जादू नाग की आंखों का
 क्या मैं ढह जाने दू इस महल को
 अपने आप
 क्या मैं दफना दू जोवित ही अपने ताप
 या उठ बैठूँ
 और बाहर निकल पड़ूँ
 चीखूँ और विल्लाऊँ
 बारूदो सुरग दिखाकर लगा दू
 एक आग
 जो मेरे अंदर
 सुनग रही ह न जाने कब से

विलप पीढ़ी का गीत

मेरो कोई पीढ़ी नही जो बुजुर्गों
कोई पीढ़ी नही
वह भी नही जिमको पुकारते हैं आप
शायद कही हो
शायद कही

मन पर दृश्य परिवर्तन के बीच कही
जो अधिकार जाता है
जिसका कोई दशक नही कोई प्रोता नही
उसका अनजाना अनदेखा
अस्तित्व
आप नही जानते नही पहचानते
धृष्टता क्षमा करे

शर और शर के बीच ठहरा हुआ समय
जिसे कोई नही भोगता
किस धड़ना में प्रोता है क्या प्रतीक्षण
करता है
व गल आगताहीत
अनानुभूत सत्य
आप नही जानते नही पहचानते
धृष्टता क्षमा करे

लिखते-लिखते जब टूट जाती है एक पक्ति
तब दूसरी से पहले
जो रिक्तता धूट जाती है स्वाभाविकतया
वह अभिव्यक्ति शून्यता
की तिनता
आप नहीं जानते नहीं पहचानते
धटता तमा करे

धटता तमा करे
आप मुझ जकडना क्यों चाहते हैं
पतवार की तरह पकड़ना क्यों चाहते हैं
आपकी यह नौका
सहरो के शीश पर
नहीं
रैत के सीसे पर रखी है जो बुजुर्गों

मेरी कोई पीढ़ी नहीं जो बुजुर्गों
कोई पीढ़ी नहीं
पीढ़िया हाती इंसानों की, पशुओं की
नहीं कभी जिसों की

जिसों जा फुटपाथों के खामबो पर
मक्खियों के चूसने से
पड़ी हुई है
निर्मल और निरपेक्ष
जिसों जो दो केसा में योन्नाइट के
प्रकाश की चकाचीध हसी

वरसात के जल गिना छेदों के मारें
 कांपते हैं भयभीत तारे
 न रक्षा करता है
 न वज्र धन
 वश पर गिरता है
 जिसके साथे मे न मौत है न जि दगी

परम्परा

एक शिना-लेख धरती के सीने पर आ गिरा
 माया कोई नही जानता जिसमे वह निखा है
 राजाधर मे रखा है
 मिना की विमनियो म
 दफतरो की फायलों मे
 छुब गयी है सदिया
 शय केवन कौतूहन ह
 जिनके न पीछे कन है और न आगे कन ह

भव सागर पार उतरने की प्राथनाए

तथास्तु
 पूरो हो गयी है
 जब वाइ नही और आगे पार तरने की
 लहरा की मुजाए
 चट्टान बन गी है
 निर्वाण पा गयी है साथी अत्माए
 और क्या कामनाए है आ बुजुर्गों

मरी कोई पात्रो नो भा बुजुर्गों
 कोई पोढ़ी नही

रागस्तान के जगह बदलते डूहों में
 दबी पडो रुग्णताय
 पडो होंगो पडो रहे
 डूह जगह बदलते हूँ तो नया रूप
 कोई नया नही होता
 दिस्सायी दे जाती है वही कोई डूव
 मृगतृष्णा है
 जिजोविषा
 किसी सम्भावना को एक प्रतीक्षा
 में वह प्रतीक्षा हूँ
 केवन प्रतीक्षा
 अविराम अविराम अविराम

रात पहले पहर में

मार स्नाये हुए २ । निन्दो रग रग
 नान नान नीनी ननी धार फिर कानो
 प७ गयो है । जगमग जगमग

नियोन नाइट का अनिजा । बहना
 उतर गया ह सुनकर मानो बोई गानी ।
 अंतर गया है मनहूस बु । ।

उपर निया उ७ हुए रवाह रग का ओवरकोट
 गेट हुए सजा ल एक वृ ।
 चौराह पर । जस प्री ७६ गोर

राट का रनिग के रहारे ख । ७ ।
 स प्रद म ७ ६, निर श और नि पक्ष
 । मन स और म दसे, हू और नली

चौरा के गनीव पर हर गरी
 काने नहू स लक्ष्मण म ज्ञा ७६
 पय हो गये है कानी कानी रानी

गक मनपना से अनिन अतचित है
 ट रो हूई ७ ७ वन दवाश
 हुन फुस क्ता हाती ह दातें

उन दृश्य-प्रवारिया की मोठी वीन्ती घाते
आज के दिन जा रता की रगीन ध्वजार
फहराय रस रके, कल के लिए चिन्तित है ।

जिनका न कल था न आज है
न कल नोगा, वे टेबिग्राफ यन्त्र
खडे हुए है यन्त्रित, नमने-नमने

कथा पर सारे तार सारा गल काज है
ओर दोर पर टकीप्रिटर और गतरिया
मट रहे है भूठ के वृत्तपुरत १ । न

आलमारी के खानो सी कई मजिनी इमारत
मान जिसमे भर दिया जाता है ठू स-ठाम कर
राजदण्डगारी करते रहते है निगरानी,

वक्त आते ही चल पडता है यह मान
ग्राहक के पास अपने आप, अपनी चाल
लौट पाया तो लौट जाता है फिर अपने खाने पर ।

बेघर और बेदर राह की रेलिंग के सहारे
में सडा हू समय ठहरा है सितारा में
ठहरा रहेगा कब तक अपने स्वभाव के विपरीत ।

बाहर हर तरफ ठण्डे है स्पर्श सारे
अंदर धधकते हैं अहसास के क्रुद्ध गीत
जनना है जिंदा रहना इन गलियारो मे

मांस के जलने की तीक्ष्ण गंध दमघोटू घातनाए
कुहरा बनी छापी है मोन वा पत्थर है छाती पर ।
मैं सहसा कितना बडा हो बला हू इस धानी पर

आसमान पुराना न मस्तक और वाले दिशाए
मेरे मुँह का जुनी फा गंगा इन्ग और गाँवा पर,
धरती सिमट भागी - सिडुडी मेरे पाँवा पर

जो चाँता ह एक ठोकर से उड़ा दु यद पत्थर
भूक दु उफन जाये वी मिधु सारे,
मूड़ी में पास कर ब्रह्माण्ड गढ़ दु एक घर एक घर ।

एक और दिन

एक और दिन

स्पाट मौत के मुँह में

हाथ डाल कर

तोड़ लिया ह

सफेद दाँत

मेरी गुलाबी हथेली पर

रख दिया है समय ने

शाब्द फिर मजान

कर लिया ह मुँह से

जिस पर वह खुद ही हस पडा ह

मैं नो हँस सका

मेरी कानो भाँखें

जिन धिरखा से नीली भूरी

हो गयी है निरभ्र

उहे मैं

देखता हू वित्मप से

फैला हथेली पर गहरो रंगारण

गीनी गीनी सड । मा

मुँह ग्लानो (

अओ अओ

मैं नरों गारा न

रगाभा का रव

फिरभी शायद आदत से

विवश सा

में चल पड़ता हूँ

पाँव रखने लगता हूँ भविष्य में

जब मैं ठिठक जाता हूँ

सिड़की से भाँकते हुए

फूल को

या मुँह पर बठे हुए

खूतरों को

देखने की तानसा से

एक शीतल सुगंधित हिनोर से

भर जाता है निर्जाव सूना सा अस्तित्व

एक जीर गोधर वदन जाता हूँ

कही मेरे अक्षर

राय स्टीयरिंग पर

महसूस करते हैं

धड़कनें

धक् धक् धक् धक्

पेटों और फूलों की

निहित सुगंध से

अभिभूत गति अभिभूत

में रात के देहों

और रायों को

एता एता चमत्ता हूँ

पोस्टरों और रुड़नबोड़ों को

पढ़ता हुआ बढ़ता हूँ

और मुझे

लगता है

हर चीज के होठों पर

एक अनसुना प्रकम्पन है

अनगुंजा

और उन सबके लिए

मेरे अंदर कुछ शब्द हैं

अनसृजित

जिनको मुझे अपनी

प्राणप्रिया के लिए ही

रचना है सजोना है

हर वस्तु जिसे मैं

देखता हूँ घूता हूँ

सुनता हूँ चखता हूँ

श्वासों में भरता हूँ

एक शक्ति दे जाती है

अनायास

समस्त आकारतीत

स्पर्शातीत स्वरातीत

स्वादातीत गंधातीत

और मैं विह्वल हो उठता हूँ

उसे दे देने को

किसी नव आकार में

नवन स्पर्श में

नवीन स्वाद नये स्वर में

और कुछ नही तो तरंगित सी
 , किसी नयी :
 मैं पत्थर बो देता हूँ ।
 नगर झड़े हो जाते हैं
 मरुस्थल में
 इस्पात में रोपी हुई धडकनें
 टानने लगती हैं
 नये रूप नये रंग
 मिट्टी उध्वान देता हूँ
 ठहर जाती है वरुण में
 मधुमग्न बनकर
 रेखाएँ सी च देता हूँ
 शब्द साँस लेने लगते हैं
 कानजयी अक्षय

अपनी उपनिधिओं पर
 सुप्त होता हूँ बच्चों सा
 किन्तु तभी
 अस्तित्व ही उठता हूँ
 उनमें अपने को न पाकर
 स्वर्ग और सम्पूर्ण
 मैं बड़ा हो उठता हूँ
 दहल दड़ा
 मेरा फिर जानमान भीरु वर
 उठ जाता है वनी तक
 जहाँ तब रिलीफ है
 दृश्य है

अपनी महानता से पराजित

मैं देखता हूँ दिन को लहू-सुहान

सौंभ की बाही में

मैं उद्विग्न मन लैट जाता हूँ

अपनी आयु की शय्या पर

कल फिर होगा तो देखूँगा

क्या कोई अर्थ है ?

यहाँ बाहों का जघ है राहें
जोर उनके धोर पर
हथेलियाँ हैं
नोर्मन्त सैरड
यहाँ आनिमित्त ज्वालाजों में
तुम्हें जावाहन करते हुए
मेरे छरने का
क्या कोई अर्थ है

यहाँ सुने हुए जोंठ
कोरे कागजों से फेंते हैं
मैले हो रहे हैं
धूल की पतियों से
जननिमित्त शतों से
यहाँ उत्तराधिकार में प्राप्त
प्रभुसत्ता शून्य
जर्म्यवर्ता की मुहर लगाते हुए
मेरे सिहरने का
क्या कोई अर्थ है

यहाँ हर आत्माश का जग है
सर्व दर्शों का आर्तक

हर काम्य बीज का फल है

अनचाहा अपना ही शत्रु

वहाँ आदिम उवरता मे

हिमशिखरो से गिरते हुए

मेर विष भरने का

क्या कोई अर्थ है

जहाँ हर स्पश स पहले है

कद्रासष्टिव का स्पर्शः

और हर आनन्द को, ।

उसके जन्मदाता हाथ-

फेंक देते हैं कूडा ।

वहाँ रोमांटिक जगत

एक विपरीत गति विम्ब मे

प्रेत सा

मेरे विचरने का

क्या कोई अर्थ है

।

आत्म-निर्वासन

[२]

एक और दिन फँक गया है
कोई मेरे सामने
मुझे दीन-हीन भिक्षारी समझ कर
सोटे सिक्के को सार्थकता दूँ भी
तो कैसे दूँ
यहाँ अस्पताल है
नो हार्न प्लीज
बाहर लोग चत रहे हैं सामोश
उस वायरस से भयभीत
जो भस्मकार की स्वर की तरह
फँस जाता है जनायास
शहर भर में
लोग भीड़ क्यों हैं
लुगुस क्यों नहीं बन जाते
मैं रोग शैया से उचल कर
बाहर पचहुने को कसमसाता हूँ
कायर करठ में घुमड़ने दाते
क्रान्तिवारी नारे की तरह

अच्छा मेरे रोग से चिंतित हैं

सार अधिकारी

नगर में है सफाई का अभियान

लोगों के जमा होने पर है पावदो

सिर्फ पूजा और कीर्तन सुने है

असह्यार रोज घापते हैं

रोग से बचने की हिदायतें

कहो अम्रुगैस-लाठी से

वे ला रहे हैं

लोगों को होश में

वे मेरे पास आये हैं

कहत है मैं मर कर स्वर्ग नहीं

जाता हूँ क्यों कर

देशभक्ति की खातिर

उनके देशभक्ति की बात बघारते ही

मुझको लगता है

वे अभी छुरा भौक देंगे

मेरे पलक मारत ही

मेरी मा पडी है मरशासन

यही किसी बाड में

वे किसी थनीशाह की खूब खेती-साथ

खूसट रसेन से जात है

कहते हैं ते पूज यह तरी मन्ता है

वे हर जेल को कहते हैं अस्पताल

और हर अस्पताल को ।

और हर घर पर वे स्वयं दठे हैं
काने मणिधर

और जपने ही घर में
मरा अपना निर्वासन

[२]

मनहूस सूरज भाँसें मोचकर

बदबूदार कें कर देता है

मेरी हथेली पर

एक नगर गधाने तग जाता है

द्वितरा सा बिस्तर कर

में शायद बीमार हूँ

जकेना हूँ

डाक्टर सुद अपना इलाज कर रहे हैं

भगड़ रहे हैं अपने डायग्नोसिस पर

मुझे जिंदा ही मुर्दाघर में छोड़ कर

मरे हुए लोगों के बीच

में सोचता हूँ

इनमें से कितने लोग जीवित हैं

यथा वे जाग सतत हैं

मेरी आशा की ठोकर साजर

परिवेश है यद्यच्छपत्तान

पाक साक

मरक हैं मौ शून

नत रुदा मुसपुराती ही रहती हैं

और मरीज रुदा बीसना है

स्वस्थ देह के लिए गेह के लिए
मैं जानता हूँ
मौत सबको खा लेती है एक दिन
मैं उससे छीनता हूँ एक एक मोठा क्षण
चूसता हूँ चिर्विंग गम
क्या एक और गम

तुम मुझे दे सकते हो

फूलों का गुलदस्ता
और फलों का रस लेकर
प्यार के आंसू बहाने वाले

जो आध्यात्मिक

मेरी आँसुओं के सामने से हट जाओ
मैं एक एक सन्देश दे सकता हूँ

पारदर्शी शब्द

जिससे देह दशन नगा हो सकता है
शल्याघात की क्षमतावालों यहाँ आओ
वे जिनके हाथ नहीं काँपते
इस्पाती औजारों को पकड़कर
वे जो समझते हैं इन यंत्रों को
अपनी इच्छाओं का दास मात्र
मैं केवल उनकी परीक्षा हूँ

प्रतीता हूँ

मैं जानता हूँ शल्याघात के क्षणों में
मेरा भविष्य है और नहीं भी है
मैं अधीर हूँ अंतिम निराश के लिए

जब हानें गर्म होती हैं और सुबह ठंडी
जब दिन तपता है और रात जना दती है रात,
जब एक मौसम से हाने उगना है अकस्मान् सऋण
किसी अथ मौसम में तब कोई वायसरस प्रमितात
घात में जा बठता है हर गनी मोड़ पर ।
मेरी बीमारी है, हां, मेरी प्रानी ही दुबनना
प्रतिरोध शक्ति की क्षीयता ।

गिद्ध सार्ग ही नाचत हैं ।

जब जब रँगन लगता है कीड़ा की तरह जिस पर,
तब सत्रास को विस्म से में समझ जाता हू
कौन सा है वह मौसम जो अत्र आ रहा है ।
(सुना है कि मौसमों को पुरानो पहवान
अदिम कवीनों में पनाह पा रही है
पेड़-पौधों-फूल-पता के अंगन में
नगो देठी हुई)

मेरे मित्र नानता पर बदिताए जिस सबत है
भोग नरो रक्त, रुध स्रो निर्गो-पुनिर्गो के
द्वारों पर भारत सुरक्षा का तय उड़ दिया गया है
मास्कारी सत्ते य तारे दिव निषा है तुम्हारे
में मानसिक मंयुन में विरदाम नरो करला ।
इत्यद इनीनिय मेरा पीरय रहता है उत्तेशिन ।
तुन ने यरठी गयोतिरि के नान रट रसे के जायो
क्षेत्रिन निग्र, इन मवसे इन्निटो या पा मुखा है उरुया
क्या हागा अवरार ? अन्धो कर नगी होध यरो ।
मुझे जगर बाली गिनी दिग धनना,

प्रस्तुत हूँ साथक तो वो मेरी निरथकता ।

निरथकता मे जी रहे ह कुर्ते दुम टिनाते, गुराते
जपने स्वामियो के चरणो पर, और हर राहगीर को
वफादारी से उरात-धमकात गुरात और भाकत
में चौका हुआ, शायद दिग्भ्रमित, एक राहगीर हूँ ।
मैं जपने अन्दर देखता हूँ एक नक्शा और मैं
सौज रहा हूँ गतव्य सडका की दुर्गम वर्ग पहेली मे ।

मुझे जो राह रुचती है उसको रोके क्या सड़े हैं
सोने के बिकने पवत खेद कि मैं रोमांटिक नहीं हूँ ।

मेरा माथा गर्म है और शरीर कापता है प्वर से,
मैं एक निमम बम के पाजिटिव निगेटिव तारो के
घोर लिये ठहरा हूँ बढ़त हुए समय की प्रतीक्षा में ।

मुख

तपते हुए आममानी सानोपन के नीचे
 एक पादारो फसन । कान और जकान के
 बीच एक भूस खा जाती है जधकच्ची भीड़ ।
 कागजों का पेट भर गया है मैं बहुत भूखा हूँ ।
 मेरे जाने सड़ी मिस मौना नाखूनों को देखती हैं,
 और पीछे हुत्प मिस्टर मीन मुझ सूनी समझते हैं ।
 परिवहन की प्रीक्षा है भवाजों को । भूखी चीखें
 कहीं नहीं पहुँचती । ईश्वर को इगजत है
 केवन आकाशवासी के स टेना से भोग की ।
 नपु मक्ता के भरडे सहराते हैं गौरव से
 सावजनिक भवनों पर ।

वीनस तुम्ह पता है कि

प्रेम किस विडिया का नाम है मैंने बहुत-बहुत-बहुत
 दिनों से नहीं देखा क्या तुमने देखा है ? क्या देखा है ?
 चलो, रहने दो, रहने दो प्रश्न नहीं दोहराऊँगा ।
 मेरे पास भी हर प्रश्न का उत्तर नहीं है, किसी के पास है ?
 जब कोई बात नहीं करता तब जहमास नगे पाँव
 नुकीली गिट्टियों पर दौड़ पड़ते हैं । जब मुझ से
 रुके नहीं जान हैं ये ठेकेदारों का मुन्ताज
 जधवने, एन्ड-स एंड रागन ग । इस सन्वसर में
 सानी रेवों में पान गुम जाने हैं और फिर कोई
 अपने पर एक भी सैट नहीं करता है करने दस पर ।

सुना था विचारों के लव पाव होत हैं ।
सुप्त हो गये हैं क्या पाव आदमी की पृथ्वी जैसे
मेरे पाव कहा है अभी कर्मर के नीचे कुछ शेष है ।

प्रोमैथ्यूस जरा माविस की डिब्बो तो देना
जिसे तुम चुरा कर लाये थे शायद किसी ट्रेडिन से
मैं जरा बिगरेट जना तू भीर सोच तू, हाँ सोच तू
उरते हो कि कही आग न लगा दू इस कागज के
नगर में, 'सुबह अखबार क्या कहेंगे ? मैं बता दू
कोई मिथक फिर नही जनमता दुवारा नही जनमता ।
माविस की तीलियो से कोई पहिया नही बनता
इस ईस्पाती समय का । "योन लाइट की दमक मे
हाथो की हाथ नही सूभता । वापस लोगे क्या माविस ?

कभी तुम अंधेरे क अभ्यस्त होकर देखना,
तुम्हारी आँसो से निकलकर एक अनहोन प्रकाश की
किरण चन पडगी तुम्हारे आगे जाग जागे ।
मुझे ज धेरे की भी साधकता में आस्था है ।
मैं बहुत भ्रष्टा हूँ और भ्रष्ट क पाव बडे लवे हैं ।

विद्युत्काम

मैं अपने ही देश में विदेशी हूँ,
 अनधिकृत प्रवेशी हूँ
 मनुष्य नहीं, गुरिल्ला हूँ
 मैं बैठ गया हूँ एक अजीब गुफा में
 पना रहा हूँ आदिम अस्त्र बुद्धि
 जोसम भरे दण्ड
 और कभी कभी घावे मार दता हूँ
 आधुनिकतम हथियारों से सुरक्षित
 सभ्यता के खेम पर
 निरस देता हूँ अपने लहू से एक कविता
 एक चेतान्वी यत्नागृहो की दीवारों पर
 भाड़े के सिपाहियों और
 सिक्खड़ों से निर्मित
 मैं ससद की हर टैबिन पर
 घोड़ जाया हूँ हैंडग्रेनेड
 और हर भीड़ में कुछ टाइमबम
 और हर घर में दना जाल हूँ
 कारगुनों और बंदूकों की फव्वारियों
 और हर खेत और हर वारसाने में
 लोगों को बन रहा हूँ गुरिल्ला
 मेरे हाथ में एक बमबम एक
 तारपीटो है सि दानक

सातव वेडे पर लाद कर सारा इतिहास
में लुब्धो दूगा प्रशा त महासागर में
और सारे अज्ञात महासागरा के
किनार जनते हुए
पवतो और जगनो में
फिर मेरा दश जमेगा
एक नये गुरिल्ले से
शुरू होगा फिर मेरा अपना इतिहास

रणजीत

पृष्ठभूमि

जर्द है चांद का मायूस चेहरा
रह रह कर सांस उठता है
दमे का मरीज बूढ़ा आसमान ।

उधर

जपना गम गनत कर रहे हैं सितारे
विहस्की की तन्त्र घुंटी में

और इधर

भूख से कुमबुनाती हुई आस की दुधमु ही बूँदें
जपने अस्तित्व की भीख मांग रही हैं ।

फुटपाथों पर ठिठुर रहा है बेघरवार सनाटा

बेरोजगारी से तग उजाना

रैन की पटरी पर कट कर मर गया है ।

जपने बसमसाते हुए प्यार की पाश्चिमों के किनारों में
जकड़े

करवटें बदन रही हैं

हिस्टीरिया से पीड़ित भीमों

पटाइ

जपने पौरय की नाश पर पुराने मस्कारों की बर्तों का
बकन उने

मानम मना रहे हैं ।

अकेला चीख रहा है कुवारी रात का प्रथम धब्बा
बादलों की जवान बेटियाँ

जिस्म की टूकान कर रही है ।

पत्थरो को पूज रही है मासूम कलियाँ

फूलों को परेड मैदानों में उत्तिवद्ध करके

सगीनों भोंकने की दीक्षा दो जा रही है ।

हथकड़ियों से जकड़ी हुई हैं पेड़ों की शाखें

बेलों की साँसों पर परा लगा है ।

सुरक्षा अधिनियम में गिरफ्तार कर लिये गये हैं भरने

आधियों के आदोलनों को

मशीन गना से मूना जा रहा है ।

टोयर गैस से आक्रान्त है दिशाओं की जाखें

धरती का एक-एक जोड़

दर्दा रहा है

शापद कोई सवेरा

क्षितिज के गर्भ में घटपटा रहा है ।

विष-पुस्तक ।

पास मत आभा मेरे
मुझसे न पूछो बात काई
मत धड़ाजो हाथ मेरो आर तुम सम्पर्क का—
मैं विष-पुरुष हूँ ।

बहुत संक्रामक हुआ करते हैं नीले जहर के कीड़े
कहो ऐसा न हो
इस जहर की तरह
तुम्हारी धमनियों के रक्त में भी उमड़ने लग जाय
जाग
घन्तर में दबाय हूँ जिसे मैं
भपट कर कोई भपट उसकी तुम्हें घृते
कि वे वि गारियाँ जो
मुर्गों से सौजी हुई हैं रुद सारों में तुम्हारी
जाज फिर जाग जाय
इसलिए मुझ से बचो
जो वर्तमान को पदों का रत्नों खोजकर
जिन्दगी खो लेने की बात सोचने वाली ।
जानकम विष बँटता है मैं ॥

पीले प्रेतों की बस्ती में

कभी कभी डर सा लगता है
इस पीले प्रेतों की बस्ती में रहते रहते ही
प्रेत न मैं खुद ही हो जाऊ
कही न उस ते पू जी का अजगर मुझको भी
प्रेतों के हाथों में भी विक जाऊ
उन सब जिन्दा इंसानों की तरह
जि-होने पहले स्वर में
मानवता की विजय-पताका फहराई थी
कि-तु जि-है फुसला फुसला कर
चादी के इस वक्रव्यूह में लाकर
इन प्रेतों ने
आज प्रेत ही बना लिया है

या तो अपने पर मुझको विश्वास बहुत है, लेकिन
आसपास की स्थितियों के प्रभाव को भी
भुठाना मुश्किल है
ठीक है—
इन्सानियत के प्यार की यह वृत्ति कुछ हलकी नहीं है
कभी कभी पर
नोटा के कागज भी कही अधिक भारी हो जाया करते हैं
मनके गहरे विश्वासों को
तन की भूस हिला देती है

रोटी की छोटी सी कीमत भी कभी कभी
 इन बड़े-बड़े आदर्शों को रहन रहकर
 भिट्टी में गव मिला देती है ।

यदि ऐसा हो कभी

कि उसने पूजा का अजगर मुझ को भी

प्रेता के हाथ में भी बिरा जाऊ

मानवीय क्षमता

समता के गीत छोड़कर

प्रेतों का ही यशगान करने लग जाऊ

तो—

जा घबना स बच हुए जिन्दा इ सानो ।

मुझको मेरे वे गीत सुनावा

जो मैंने कल प्रती का इ सान बनान को निक्से थे

प्रेता में रोषा इमान जगान को निक्से थे

एक और दिक्ते आदम पर

एक और धनती छाया पर

उन गीतों की शक्ति तीनना

हो सकता है

उनकी गर्म सांस फिर मेरे

दुर्दामन में प्रान फूक दे

किररों की जगुनिमा उनकी

बादों के पत्तों में दबे पड़े

इंसानी बीजों को जंजुर दण्ड

फिर रु शायद

भटका साथी दन तुम्हारा

रह पच ड से

और तुम्हारा परचम लेकर
लडन को प्रस्तुत हो जाये—
कभी कभी डर सा लगता है ।

माध्यम

नै माध्यम हू ।

नै उन सबकी भटकती हुई आत्माओं का माध्यम हू

जो अदूरे और अतृप्त मर गये

मेरे कंठ में उनके स्वर हैं

जिन्होंने सारी जिन्दगी नि शब्द गुजार दी

मेरी कनक में उनकी आग है

जो अपना आग अपने दिनों में दबाए हुए ही चने गये

मेरे गीतों में उनका विद्रोह है

जिनकी गर्दनें उठने से पहले ही झुका दी गई

यह मैं नहीं उनकी आत्माएँ बोल रही हैं ।

जब मैं दोनने के लिए अपना मुँह खोलता हूँ

कुछ भटकन हुए शब्द मेरे आरक्षण मडराने लगते हैं

ये उस अग्र 7 मेसक क्रिस्टोफर कोउवेन के शब्द हैं

जिसने स्वप्न की आकाशी की सड़ाई में अपनी जिन्दगी दे

दी थी

ये इतरनेदानन प्रि।उ ध उन सफ़ाओं आतिकारी सैनिकों के

शब्द हैं

जिन्हें मरना पड़ा था उठाने के लिए

मार्को मेस्टार्थो के हाथों सौंप दिया गया था

ये जैसे उ के उन एगारों मूक यद्दिया के शब्द हैं

जिन्हें सिद्धा दफ़्ताने के लिए

सुद उहीं के हाथों से कब्रें सुदवाई गयी थी
 आसविट्ज के गन्धर्वों में घुटी हुई ये लाखों आवाजें
 अब सुते आसमान में विवर वर लोगो के कानों तक
 पहुँचना चाहती हैं ।

मैं मायम हूँ ।

जब मैं निखन के लिए अभी बन्म उठता हूँ
 एक भ्रम मेरी कनन को घेर कर खड़ी हो जाती है
 यह आग अन्जीरिया की उस जवान विद्रोहिणी जमोला
 की आग है

अमनुषिक प्रत्याचारों के बन पर
 जिससे वे रव अराध स्वकार कराए गये
 जो उताने कभी नहीं किये
 यह सीक्रेट आर्मी की शिकार उन हजारों अन्जीरियाई
 मशालों की आग है

जिनकी जिदगियाँ

फ्रांसीसी साम्राज्यवादियों की नजर में
 बोड पर निखी हुई सफ़ापो से ज्यादा कीमत नहीं रखती
 यह आग चाहती है कि मैं इसे कागजों के पृष्ठों पर
 उतारता जाऊँ

और कागजात के पृष्ठों से वलागों के दिनों तक पहुँचनी
 जाय ।

मैं मायम हूँ

टूटी हुई आवाजों और दबी हुई चिनगारियों का माध्यम ।

जब मैं अपना राज सभानता हूँ

एक दृढ़ मेरे अस्पाय आकर जमने लगता है

यह कांगो के देनाज दादशाह सुमुम्बा का दद है
 जा मेरे साग को उदाम और आवाज को गमगीन
 बना रहा है
 यह कांगो की आगदी के उस निपाही का दर्द है
 जिसे निट्टया करके गोनी मार दी गयी
 और कांगो के जम हुए खून में एक उदान भी न आया ।

मैं जब अपनी मनक उठाता हूँ
 कुछ घायल और बरताद अपना को अमन मानयात
 मउरान हुए पाता हूँ
 य तैनगाना के उस बूढ़ किसान के सपने हैं
 जिसने जमीना पर जोतन वानी का अधिकार चाहा था -
 और इसके इनाम में निन्दन हाथ पैर धाट दिये गये थे
 ये उन एक सौ आठ बाली किसानों की पन्था के सपने हैं
 जिन्होंने अपनी पसतो हुई फसला और जवान हाथी हुई
 बोटियों का

लुटेरे हाथों से दवान के लिये
 बटुके उठा ली थी
 और जिनकी पन्थों फाँसी के तरता पर लाल र मूद
 दी गई
 य तैनगाना के उस नर से जिन्होंने गंव बो
 संकड़ा सिद्धियों और बन्वा के सपने हैं
 जिसे जिन्दुस्तानी सरकार के धातु सिपियों ने छर कर
 जाम मगा दी था

य सान चाते हैं
 जिन्होंने दुनियाँ के एक-एक इलाक़ की पन्थों तक
 पहुँचाई !

मैं माध्यम हू
 बेताब दर्दों और घायल सपनों का माध्यम ।
 जब मैं सोचना चाहता हू
 एक भयानक पागलपन मेरे दिमाग को चारों ओर से जकड़
 लेता है

यह उस अमेरिकी पायलट का पागलपन है
 जिसे हिरोशिमा पर एटमबम गिराने का आदेश दिया
 गया था

और जो इस भीषण नरमेध का प्रायश्चित्त
 अमेरिकी पागलखानों में कर रहा है
 यह पागलपन व्याकुल है
 कि मैं इसे दुनिया के हर जगबुज नता
 और उसके हर वक्रादार निपाही के दिमाग तक पहुँचा दूँ ।

मैं माध्यम हू
 और जब ये शब्द यह आग और ये सपन मेरे प्रासपास
 मडराते हैं

मैं अपने धुंध से व्यक्तित्व को भूल जाता हू
 और मुझे लगता है कि मैं ही वह जग्रेज सेसक हू
 अन्जारियाई जमीता हू
 मैं ही रबर की तरह जमी हुई कागो की आत्मा को
 हिनाम की कोशिश करने वाला सुमुम्बा है
 पाग में जिंदा जनती हुई स्त्रियाँ और बच्चों की ये
 दर्दनाक चीख
 मेरे ही भीतर से उठ रही हैं

मैं ही वह पवित्र पागलपन से भ्रष्टांत अमेरिकी पायनेट हूँ
ये सब मेरे ही भीतर धी रहे हैं
मैं माध्यम हूँ ।

फाउस्ट के कन्फ़ेशन

अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए
मैंने अपनी आत्मा को रेहन रखा था
सोचा था
कि जब फिर मेरे पास पर्याप्त शक्तियाँ हो जाएँगी
उसे छुड़ा लूँगा
लेकिन मुझे क्या पता था
कि ज्यो-ज्यो मेरी शक्तियाँ बढ़ती जाएँगी
शतान का कर्ज भी बढ़ता ही जाएगा
और अन्तिम जब मैं उसे छुड़वाने लायक हुआ
मेरी आत्मा नीनाम हो चुकी थी ।

अपनी मिट्टी के बचाव के लिए
मैंने अपने विद्रोह को सुनाया था
सोचा था
जब मैं फिर लड़ने लायक हो जाऊँगा
उसे जगा लूँगा
लेकिन मुझे क्या मानूस था
कि वह अफीम जो मैंने उसे सुनाई थी
उसके लिए वह रूढ़िवादी होगी
और अन्तिम जब मैं लड़ने लायक हुआ
मेरा विद्रोह मर चुका था ।

८६ ।

जिस आपदधर्म की तरह स्वीकार किया था
उसे जीवन दर्शन बनाने के लिए मजबूर हुआ ।।

जब मैं भटक रहा हूँ

जबने प्रकृति हीन अस्तित्व के कंधों पर

घरने असफल विद्रोह की माया रखसे हुए

ताकि देख लें मेरे हससफर

समझ लें

कि किस तरह समझीना

—एक सामाजिक समझीता भी—

विद्रोह की आत्मा को तोड़ देता हूँ ।

मैं रेलिन मनरो का अन्विभक्त पत्र

सुनो,

ओ दुनिया के सबसे सम्पन्न और सबसे सम्य देश के भद्र
नागरिको,

सुनो ।

मैं जो अब तक सिर्फ तुम्हारे एयर-कंडीशण्ड टॉकीजो
के पर्दों

या फिल्मो अखबारो के रंगीन पृष्ठो पर से ही बोलती
रही हू

मैं जो अब तक ओटे हुए व्यक्तित्व ही तुम्हारे सामने रखती
रही हू

निर्माताओं निर्देशको सवाद लेखको क शब्द ही

तुम्हारे सामने दुहराती रही हू

आज तुम्हारे अपने ही दिन और दिमाग से निकले हुए

अपने ही शब्दों से स बोधित कर रही हू ।

सुनो, अमेरिका के कना मर्चण्ड फिल्म-निर्माताओ

निर्देशको आलोचको और दर्शको ।

तुमने मुझे हमेशा नींद को गोतिया दी हैं ।

मेरी चेतना, मेरे विवेक भर जहसास को सुनाया है

मेरे नारीत्व मेरे व्यक्तित्व मेरी आत्मा का होश छीना है

और मेरी भूख मेरी प्यास मेरे सननों और नरे निम्बुओ
को उभारा है

मेरे होठों के रंग और मेरे वैक वेनेस की शोखी दी है—
 मेरे शरीर को जगाया है ।
 इस शरीर का, जिसने अब मुझे पूरी तरह से नीन लिया है
 यह शरीर जो जब मेरे व्यक्तित्व का एक अंग नहीं,
 उसका दुश्मन बन गया है ।
 और आज मैं इसे लाली नौद की गोनियो से सुना दूगी
 जिनसे तुमने मेरी आत्मा को सुनाया था ।
 जो मेरे अपने देश और दूसरे देश के मेरे प्रदासको ।
 मेरे सौंदर्य के ग्राहको । मेरे अभिनय के मराहको ।
 मेरी तारीफ में छपी हुई तुम्हारे व्यवहार की स्तरों
 तुम्हारे कमरुडरा में टकी हुई मेरे नगे शरीर की तम्बोरों
 मेरे नाम पर भरी हुई तुम्हारी अदृष्ट
 मेरे उमारा पर भिगमिनाती हुई तुम्हारी भाव्य
 मेरे हाठों को और फके हुए तुम्हारे चुम्बन—
 ये सब मेरे वासपाम इस तरह मरणा रत है
 जैसे किसी गंदे अंगूठे में ले के धीवड़ में पड़ी
 किसी इंसान की लहर के पत्र में
 धिनोती मक्खियाँ जोके अर धक्के मडरा रहे हों
 और यह सब मेरे लिए प्रमाण है ।

तुम्हारी इस व्यक्तिगत स्वतंत्रता का क्या मतलब है
 जिसे तुमने व्यक्ति बनने का मौका ही नहीं दिया ।
 तुमन मुझे मात्र एक शरीर बनाकर रक्खा ।
 एक शरीर जो खूबसूरत है जवान है भोग्य है
 एक शरीर जो किसी की मां नहीं बहिन नहीं बेटी नहीं
 किसी की पत्नी प्रेयसी मित्र कुछ भी नहीं है
 मन्ज एक शरीर —
 सैंतीस तईस सैंतीस का एक मॉडल ।

मरी टेबिल पर कपडे के दो खिलौने पडे हैं
 एक बाघ है और एक ममना
 कम हा म इ हे खरीद कर लाई हू
 कितना भयानक कितना खू सुवार है यह बाघ
 और कितना मासूम कितना निरीह है यह ममना ।
 पता नहीं क्यों यह विचार मरा पीछा नहीं छोड़ रहा है
 कि यह ममना मैं ही हू
 और यह बाघ ?
 —इस मासूम ममने को निगलने वाला यह बाघ ?—
 मैं सहो शब्द चुनना नहीं जानती
 शायद यह तुम्हारा फिल्म उद्योग है
 शायद तुम्हारा बाजार और बैंक है
 शायद शायद तुम्हारा समाज का यह ढांचा है ।

रान उदास है
 और सिडकिया पर जमती हुई बर्फ की फुहार में
 किमी रहस्यपूरा पडपत्र की फुसफुमाहट है
 मरा सिर नींद से भारी हो रहा है

जब मरे पास सिर्फ एक गोनी बची है
आखिरी और छतीसवी गोनी ।
और इसके बाद मैं गहरी नींद सो जाऊँगी
ऐसी नींद जिससे मुझे कोई न जगा सकेगा ।

मैं तुम सब को आभारी हूँ, आँसू के देश-वसियों ।
मैंने इस छोटे से जीवन में बहुत कुछ पाया है
प्यार, धैर्य, शौहरत, इज्जत सब कुछ
दस लाख डॉलर का बैंक-बैलेन सब खेवर हिंस पर एक
शानदार कोठी
दसिया कारें और लाखों लोग के आकषण का कन्द्र
यह शरीर

मैंने अपने जीवन में बहुत कुछ पाया है ।
सिर्फ एक छोटी सी इच्छा दोष है
कि कोई दिव्य-ब्रह्मचरिणी व्यक्ति
बिना मेरे "कॉन्सेन्स" और शारीरिक उभारों का
अपनी आँसू से टटाने हुए
बिना मेरी सुन्दरता और शौहरत से प्रभावित हुए
बिना जान कि मैं हानीबुड की रानी बनूँगी
मुझे एक आइसक्रीम सिखाता
या सहज स्नह से सिर्फ मेरे गान बघयना देता ।
बस !
जब मैं सो रही हूँ !

मेरे आस-पास के लोग

मेरे आसपास बड़े सभ्य लोग रहते हैं ।
ये जो पानी को तो बई बई वर छानते हैं
पर जहरीली परम्पराओं को गन्ध मीच कर पी जाते हैं ।
रोटी की पवित्रता का तो पूरा ध्यान रखते हैं
पर सिद्धांत जूठे ही खा लेते हैं ।
सब्जी तो हमेशा ताजी ही काम में लाते हैं
पर आदश वासी ही अपना लेते हैं ।
कपड़े तो खुद सिलावा कर ही पहनते हैं
पर विचार रडोम - ही खरीद लेते हैं ।
मकान तो अपना बनवाया हुआ ही पसन्द करते हैं,
पर विश्वास किराये पर लेकर ही काम चला लेते हैं ।
फिल्मों तो अपनी पसन्द की ही देखते हैं
पर शादी अपने माँ बाप की पसन्द से ही कर लेते हैं ।
कितने सभ्य हैं मेरे आसपास के लोग ॥

एक हिन्दुस्तानी लाडकी, अपने मन से

सुन रे मेरे मन ।

इतना मत तन

पहले इधर देख

फिर करना मीन मस

सुन, यह है तेरा पति

इसके सिवा नही तरी गति

इसको कर ध्यार

अपने को मार

हिम्मत न हार

फिर काशिश कर एज बार

जासिर इसी से काम

या करेगो अपने पुरसो का नाम ?

तब इसी सँ भुक्ने मे क्या फर्क पड़ता है
सोचते अब तू बस इसकी परिशीता है
यह राम है तेरा तो तू इसको सीता है
पर यह राम हो या न हो, तुझे सीता रहना है
इसका ही होकर रहना है अगर जीता रहना है
भले घर की लडकियो का यही है ढग
जैसे काली कामरी चटे न दूजो रग ।

ये सपन य प्रत

सुभे घर कर खड़े हुए हैं मेरे सपने ।
शरा भर के भी निए चैन की मास नही मैने देत हैं—
दामन पकड़े धड़े हुए हैं मेरे सपने ।
मैं इनसे अभिभूत सुप्त के नगरों पर चन नेता हूँ
मैं इनसे आविष्ट आग्रियों-तूफानों में पन नेता हूँ
प्रेतों से य मेरे सिर पर चढ़े हुए हैं मेरे सपने ।
सुभे घर कर खड़े हुए हैं मेरे सपने ॥

सपन त्रिनका जन्म दिया था मैने
दुनिया की तासी नजरा से बिना-बधाकर
पामा था
पासा था
बड़ा किया था,
जब मुन से आकार मांगते

क्षण भर के भी लिए चन की सांस नहीं लेने दते हैं—
दामन पकड़े अड़े हुए हैं मरे सपने ।।

कभी-कभी मेरा हारा मन
दुनिया के सार नियमा से समझौता कर
सीधे सादे ढर्र से जीवन जीने की
वात सोच लता है न किन्
ये अवध जनवादी सपने
सघर्षों के आदी सपने
सब समझौते तुड़वाते हैं
और मुझे हर जोर-जुल्म के
वेड़-साफी के खिलाफ ये
वाह उठा कर लड़वाते हैं—
ऐसे पीछे पड़े हुए हैं मरे सपने ।
मुझे घेर कर खड़े हुए हैं मरे सपने ।
क्षण भर के भी लिए चन की सांस नहीं लेने दते हैं—
दामन पकड़े अड़े हुए हैं मरे सपने ।

एक विराट् पवित्रता

ठहरी रहो,

जपनी इन मृरानी बाहो से मुम घर कर इसी तरह

ठहरी रहो ।

जब तक कि तुम्हारे रोम-रोम से वह प्रज्ञात सत्य साँसें

ले रहा है

जब तक तुम्हारी आँखों में उसकी नीली गहराइयाँ हैं

तुम्हारे गान उसकी रीझनी से रीझन हैं

तुम्हारे होठों पर उसका स्वप्न है

तब तब मुझ घेरे रहो

उम विराट् पवित्रता से मुझे पुण्य रंग

क्योंकि युद्ध ही है वाद

अपने आप तुम्हारा आनिमन टीना पड़ जायगा

और हम दो टकराकर बीध चुने वादना की तरह

अपने-अपने घायन अस्तित्व की देस रहे होंगे

और सोव रहे होंगे

कि क्यों अब हमारी निश्चिन्ता निश्चिन्ता की चमकती

और तब

तुम्हारे चेहर पर उभरती हुई मुस्कान में मुझ

नजर लगे

और मैं मरने के निश्चिन्ता हुई अनिमन की तरह

तुम्हें जानना लगने लगे ।

हम फिर स्वयं के छोटे-छोटे घरों में फिर घर रह जायेंगे

फिर तुम मेरे लिए किये गये अपने त्यागो का हिसाब
करने लगी

और मैं तुम्हारे लिए सुनी हुई प्रताड़नाएँ गिनन लूँगा ।

तुम मेरे किसी दोस्त की नकल निकातोगी

और मैं तुम्हारी किसी सहेली का मजाक उड़ाऊँगा ।

फिर वही लेन देन

हिसाब कित्ताव

शिकावा-शिकायत

शायद हमारी धुन्न आत्माएँ

उस विराट् को अधिक देर तक धार नहीं रह सकती

इसनिये जब तक तुम्हारे स्पर्श में शिरीष के फूल खिलते
हुए हैं,

तुम्हारे केशों में रातरानी की खुशबू है,

तुम्हारी साँसों में इंसानियत की गर्मी है,

तब तक ठहरो रहो,

अपनी इन मृणाली बाहों से मुझे इसी तरह धर कर

ठहरो रहो ।

बर्फ पिघलने के बाद भी

कैसे फिराते हो तुम मेरे शरीर पर अपनी अंगुनियाँ प्राप्त ।

कौनसा जादू भरा है इनमें

कि कम-कम जाते हैं

मेरे शरीर के लितार की सारी नसों के तार

धिरक उठता है

मेरी नसी में इताव्दियों से सोया हुआ कोई आदिम

संगीत

ममन्दर की अदम्य सहारा की तरह

मग्नमुग्ध या तुम्हारी अंगुनियों के इशारा पर

और जाग-जाग उठती हैं

मेरे मूढ़ को अथाह गहराइयाँ में बेहाश

प्रागैतिहासिक युग की हगरो कविताएँ ।

कौन सा दर्द, कौनसी जाग भरी है तुम्हारी इन

अंगुनियों में प्राप्त ।

जो संकड़ा रेगिस्तान की टांगुन जाग

मेरे रोम-रोम में रस जाती है

कि जब मेरे अम्लित्व की अड़ करारखार

घरम-मुच के तरब दसुज दरों में पुष्प जाती है

जोर में तुम्हारी दर्द की अ-य देती हुई शायद वी में

जबकी गरदन अ-य है

सक अ-य है ही अता के तरह से जाती है

तब भी मुझ लगता है

कि अनलाधी घाटियों और पहाडों की क्वारी बर्फ

पर पड़े

पहले पद चिह्नो की तरह

सदियों तक मौन सहती रहूंगी अपने वक्ष पर

रुजो कर रक्खूंगी

तुम्हारी अंगुलियों से लिखे इन घावों को

बर्फ के पिघल जान के बाद भी ।

सवेदनाओं के क्षितिज

तुम ठीक कहती हो प्राण ।

सबसुब मैं तुम्हें पूरे दिल से प्यार गही करता

पर मैं पूरा दिल कहां से लाऊ ?

मैं तुम्हें कैसे बताऊ

कि जब मेरे दिल का एक हिस्सा

तुम्हारे प्यार में खोया हुआ होता है

उसका दूररा हिस्सा

एक शत्रुतापूर्ण तूफानी समुद्र में

अपनी मजिल की ओर बढ़ते जा रहे

एक छोटे से जहाज के साथ मडरा रहा होता है

और वह जहाज है

साम्राज्यवाद के समुद्र में नहीं डूबने का सकल्प लिए

हुए खूबा ।

और जब मैं तुम्हें अपनी गोद में लिटाये हुए

तुम्हारे केशों में अपनी अंगुलियाँ फिरा रहा होता हूँ

मेरे विचार हाथों में बंदूक लिए

वियतनाम के घने जंगलों में घूम रहे होते हैं

और अमेरिकी एवाइं जहाजों से बरसाये जा रहे

जहर ले घमों की किरच

मेरे चेहरे को तट्टू तुहान कर जाती हैं ।

मैं तुम्हें पूरे दिन से प्यार कैसे करूँ ?

कि जब मेरे कंधे पर सिर रख कर तुम सो रही होती हो
और कहती हो

कि इस तरह तुम्हारे कंधे पर सिर रख कर सोना मुझे
इतना अच्छा लगता है

कि चाहती हूँ कि जन्म जन्मान्तर तक इसी तरह पडी रहूँ
तभी मेरी आँसुओं में सुदूर अतीत का एक दृश्य कौंध
जाता है

हावर्ड फ्रान्ट के उस आदि-विद्रोही स्पार्टकस का दृश्य
और छह हजार गुनामो की लाशें मेरे दिमाग में बिछ
जाती हैं

और तम्हारे मांसल गालों को छूती हुई मेरी अंगुलियों में
राइफल के बोल्ट का एक कठोर स्पर्श जागने लगता है ।

तुम ठीक कहती हो

सबकुछ मैं तम्हें धभी पूरे दिन से प्यार नहीं कर पाता
लेकिन प्यार ही क्यों

कोई खुशी, कोई गम भी तो मैं पूरे दिल से नहीं मना
पाता

मेरी हर खुशी पर सँकड़ों अवसादों के साथे है
जोर मेरे हर अवसाद की धारा में सँकड़ों आशाओं की
खिलकियाँ

कि जिस दिन मैं 'राहुल' के प्रकाशन की खुशी मना
रहा था

साम्राज्यवाद का जूगा तोड़ फेंकने वाले दो पड़ोसी देश
की सेनाएँ

हिमाचल की दर्रों को इसानी सून से रग रही थीं ।

और पेरिस के किसी घाँराहे पर फहरता हुआ मजनुमों
का एक बुलन्द इरादा
जजीवार मे उठी हुई मुट्ठियों का एक जुलूस
गुयाक में र गभेद के खिलाफ कडकता हुआ
एक नारा

मुझ इस तरह रोमांचित कर जाता है
जिस तरह महीनो की जुदाई के बाद तुम्हारा पहला
आर्लिगन ।

और टोकियो मे एक मजबूरन टूटी हुई हड़ताल
लियोपोल्डविन मे एक गिरफ्तारी
सिगापुर मे झुकी हुई गर्दना का एक वापस लिया
हुआ आदोवन

मेरे दिल पर अवसाद का इतना बोझ रख जाता है
कि मैं घटो तक किसी से बात भी नहीं कर पाता ।

इसका मैं क्या करूँ ?

प्रकृति में प्रतिविम्बित किसी परोक्ष सत्ता में मेरा विश्वास
नहीं

पर मेरे भीतर बसा हुआ यह प्रकृति का अंश
इसका मैं क्या करूँ ?

हिलोरेँ लेने लगता है मेरे भीतर का पानी
समन्दर की अदम्य लहरों के कोनाहल में
उमड़-उमड़ उठती है मेरे रक्त में बसी हुई आग
बुहरीले सवेरो में पूरव से निकलते हुए सूरज के
साथ-साथ ।

और जब भी देखता हूँ
चांदनी रातों में नदी के चमकते हुए कंधार
लोट-घोट हो जाना चाहती है उनमें
मेरे भीतर की पृथ्वी ।

उमग-उमग आता है मेरे अंतस् का आकाश
सितम्बर की शामों के रग-विरगों वादन चित्रों में
विचरते हुए ।

जाग उठती हैं मेरे भीतर सोयी हुई खुशबूएँ
बासन्ती हवाओं की मादक सुगंधों के संगीत में ।

और जब देखता हूँ
सोनों के एक समूह को एक साथ जादोनिता होते हुए
एक कतार में खवायद करते हुए

एक लय में बुदालें चनाते हुए
 और एक स्वर में भुजाए उठाते हुए
 तो मचल मचल उठता है मेरा दिन
 उनमें घुल-मिल जाऊँ के लिए
 जैसे बहुत देर से जिम्मेदार होना
 अपनी माँ को देख कर
 उसकी गोद में जाने की मजबूती है ।

इस ससार में अभिठाक किराँत बन चतना में मेरा
 विद्वास नती
 पर इस ससार में गज राज आम के साथ
 मैं जा कोई गरीब और तरिफ एता मत्सूस करता हू
 उनका मैं क्या करूँ ।
 मरे भीतर जो इन आग और इस तरनता का
 अपनी आसों के आजास और अपने हृदय की मनुष्यता

का

इनका मैं क्या करूँ ?

इतिहास का दृढ़

काश, यह दुनिया कुछ कम उनमन-भरी होती ।
प्यार का विरोध सिर्फ ग्लत परम्पराए ही करती या
पैसा ही
सच की दुश्मनी सिर्फ भूठ से ही होती
उजाते के हथियारा स हथियार मिटाए हुए
सिर्फ अ धेरा ही सड़ा हाता
और इन्कनाव की सिलाफत सिर्फ प्रतिक्रिया ही करती ।

लेकिन यहा तो प्यार क सिलाफ प्यार सडा है
एक तरह क प्यार क सिलाफ दूसरी तरह का प्यार
और परम्परा और पैसा उसके पक्ष में भी है और विपक्ष
में भी ।

उजाते क सामने उजाना तना हुआ है
गुनाही उज त के सामने नाल उजाना
जोर काने अ-धेरे वा विराध नीना अ-धेरा कर रहा है ।
सच के सिलाफ सिर्फ भूठ ही नही
एक दूसरा सच भी है
और इन्कनाव के मुजादमे में सिर्फ प्रतिक्रिया ही नही
एक दूसरी तरह का इन्कनाव भी सडा है ।

काश यह दुनिया कुछ कम जटिल होती
और हमें एक इन्कनाव के लिए दूसरे इन्कनाव की

एक प्यार के लिए दूसरे प्यार की
जौर एक सच के लिए दूसरे सच की
मुखालिफ्त के दर्दनाक कर्तव्य का बोझ
न उठाना पडता ।

प्रतिभृति का गीत

मैं आज के युग में जो रहा हू
और आज की
—एकदम आज की—संक्राति में रहा हू
पर मैं जसगतिघों और विद्रूपताओं के
विज्ञेय और जात्महनन के गीत कैसे गाऊ ?
एव कि मेरे आसपास सब कुछ अन्धेरा ही नहीं है

तमाम दूरियों के बावजूद मेरे माना पिता
जमी मेरे लिये दगाने नहीं हुए हैं
जपने घर में मैं जमी आउटसाइडर नहीं हुआ हूँ
मेरी पत्नी जमी मेरे लिये अजनबी नहीं बनो है
मेरे दोस्त अभी मेरी भाषा समझते हैं ।

यह नहीं कि मुझ कभी ज्वेन्पन नहीं सत ता
पर अधिकतर मैं एव भी चाहता हू
अपने अक्वेनेपन का
अपने साथियों के कंधों पर टांक सकता हू
झोने में पड़ी एक पुस्तक की तरह
अपनी प्रिया की आँसों में विनोद सञ्चता हू
स्वच्छ सरोवर में दुर्वाकियाँ लगात हूय ।
एक जनश्री की तरह

प्रह्लाद की तरह सिर उठाते हुए सौंदर्य को भी देखता

हूँ ।

और उस संगति को भी

जो इन असंगतियों की खाई फाड़ कर भाक जाती है ।

मैं अपने चारों ओर फँसी हुई सत्ता से नहीं,

उसके बीच से अपने नक्शा उभारती हुई क्रांति से

प्रतिभ्रुत हूँ ।

अस्तित्व की वेदुदगियों के रेगिस्तान का तही

उसके नीचे बहती हुई सार्थकता की उस अतसतिना का

अवि हूँ

जो पाताल-तोड़ कुर्य के रूप में फूट पड़ना चाहती है ।

मैं उसकी मुक्ति के लिये सकल्पित हूँ ।

